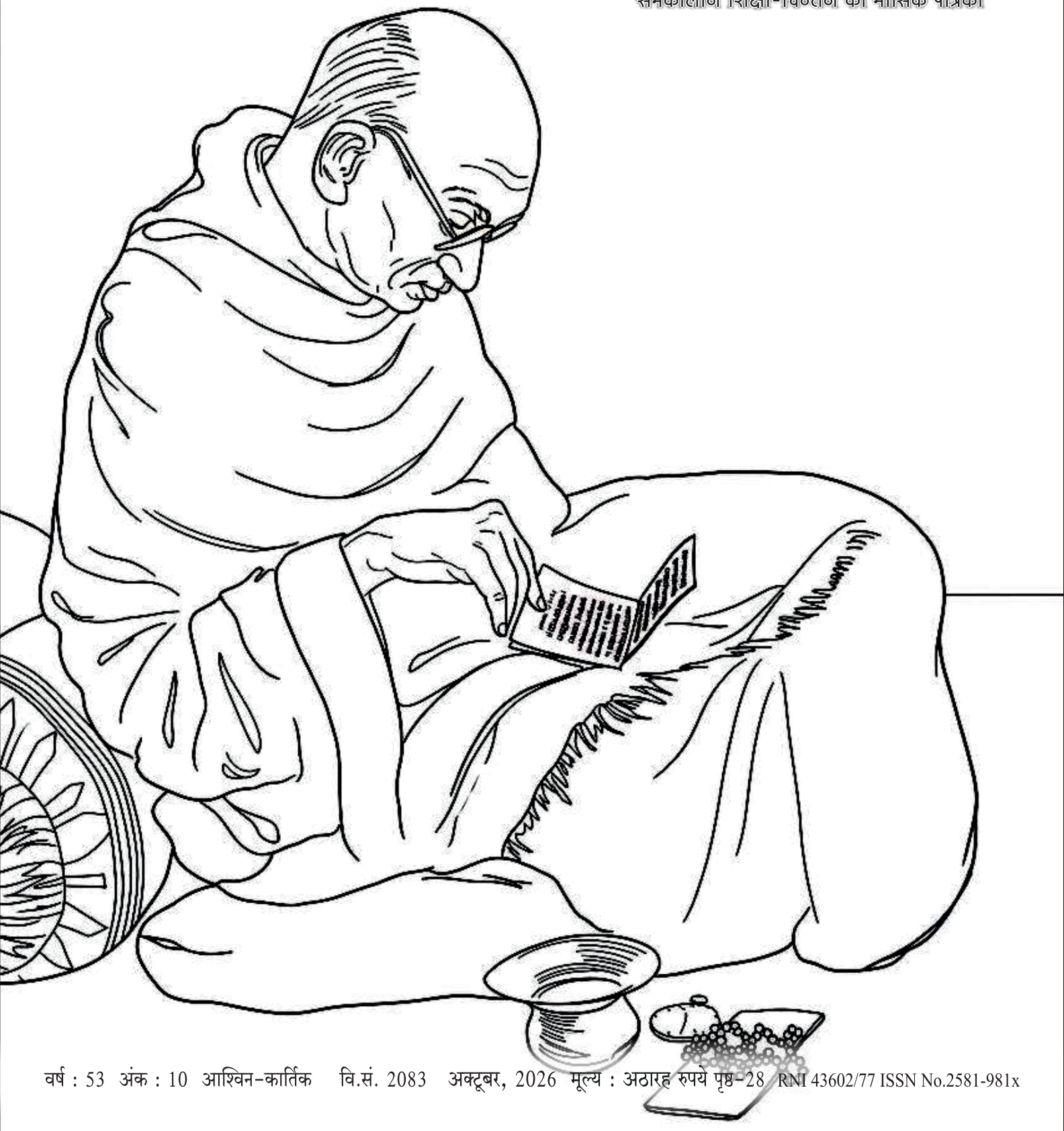
अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका



वर्ष : 53 अंक : 10 आश्विन-कार्तिक वि.सं. 2083 अक्टूबर, 2026 मूल्य : अठारह रुपये पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x



समिति में बोर्डिया स्मृति व्याख्यान

शिक्षाविद् अनिल बोर्डिया की स्मृति में प्रतिवर्ष उनकी पुण्यतिथि पर होने वाले व्याख्यानों की शृंखला में 12 वां व्याख्यान, 26 अक्टूबर को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में भारतीय दर्शन के अध्येता राम किशन ने भारतीय सभ्यता में गुरु शिष्य परंपरा पर दिया। व्याख्यान का आयोजन बोर्डिया साहब द्वारा स्थापित 'दूसरा दशक' परियोजना, संधान तथा समिति ने संयुक्त रूप से किया था।

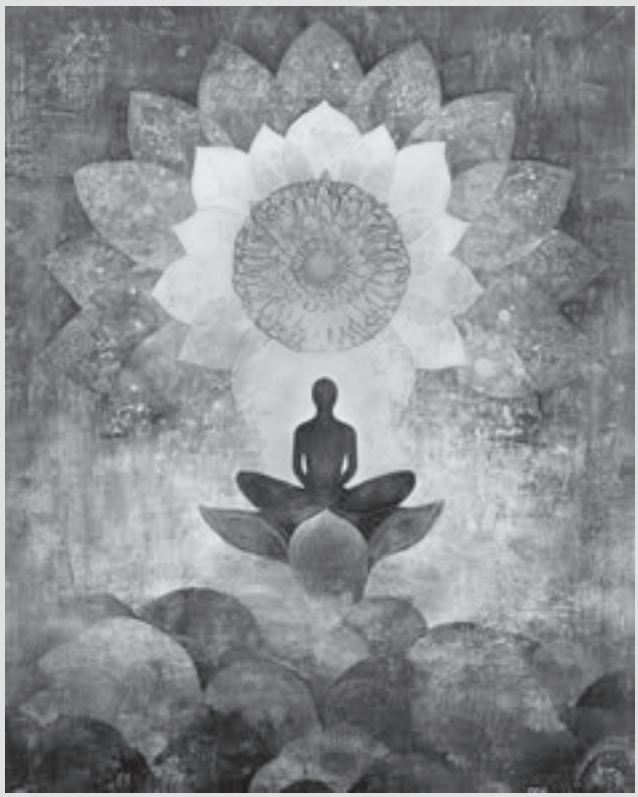
व्याख्यानकर्ता भारतीय पुलिस सेवा से निवृत्त अधिकारी थे जो बाद में सेशेल्स में भारत के राजदूत भी रहे। 92 वर्षीय रम् किशन पिछले तीन दशकों से अमेरिका व यूरोपीय विश्वविद्यालयों में भारतीय दर्शन पढ़ा रहे हैं।

उनका कहना था कि भारतीय सभ्यता विश्व की ऐसी सबसे पुरानी सभ्यता है जो अब भी निरंतर जारी है, जब कि अन्य सभी सभ्यताएं मिट गई। इस सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण बात यहां की गुरु-शिष्य परंपरा रही है, जिसमें गुरु और शिष्य दोनों के लिये कुछ अर्हताएं निर्धारित हैं। गुरु जो वेद का ज्ञाता हो, जो कामनाओं से रहित हो, जो पाप कर्म न करता हो तथा जो ब्रह्म लीन हो। इसीलिए भारतीय सभ्यता में आचार्य को देवता का स्थान दिया गया है। इसी प्रकार शिष्य वह जो आधारभूत ज्ञान रखता हो, जिसका नैतिक स्तर ऊंचा हो और जिसकी ब्रह्मज्ञान पाने की जिज्ञासा हो।

राम किशन का कहना था कि भाषा, दर्शन, विज्ञान तथा ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा से वहां की संस्कृति बनती है। भारतीय ज्ञान परंपरा कहती है जो पढ़ा उस पर चलने की जरूरत होती है। गीता इस परंपरा को निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान मार्ग बताती है।

वेदों की रिचाओं और मंत्रों के उदाहरणों से विद्वान वक्ता की बाते सुनना सभी के लिये अनोखा अनुभव रहा।
शुरू में संधान के अध्यक्ष राजेन्द्र भाणावत ने अतिथियों का स्वागत किया, जबकि 'दूसरा दशक' के अध्यक्ष अभिमन्यु सिंह ने मुख्य-वक्ता का परिचय दिया।

कार्यक्रम की शुरुआत में संघान के सुनील शेखर के नेतृत्व में उनकी टीम ने 'दूसरा दशक' का प्रेरणा गीत गाया। इस अवसर पर बोर्डिया जी की स्मृति में एक लघु फिल्म का प्रदर्शन भी किया गया।❑



सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।

- दिगम्बर जैन आचार्य अमितगति

हे प्रभु! मुझ में सब जीवों के प्रति प्रेम भाव हो, गुणीजनों के प्रति हर्ष हो, दुखी जनों के लिए दया भाव हो और विकृत लोगों के प्रति तटस्थता हो। ऐसा आशीर्वाद दें।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 53 अंक : 10 आश्विन-कार्तिक वि.सं. 2083 अक्टूबा, 2026 मूल्य : अठारह रुपये

क्र म

वाणी

3. आचार्य अमितगति

संपादकीय

5. गरीबी की समस्या का हल गांधी मार्ग से

अभिमत

9. मैं केवल सत्य का शोधक हूं !
– महात्मा गांधी

11. गांधी को एकाधिकार दावा अस्वीकार
– डॉ. लता व्यास

विमर्श

12. एआई से नफ़रत है तो उससे तौबा क्यों नहीं ?
– विल डगलस हेवन

14. साइंस बनाम विज्ञान !
– डॉ. अरविन्द कुमार पुरोहित

अभिमत

17. एक ब्यूरोक्रेट की गाथा
– प्रभु दयाल

विमर्श

20. शिक्षा के विषय पर केन्द्र व राज्यों के अलग नज़रिये
– एल्डो मैथ्यूज

पुस्तक-परिचय

22. प्रखर सत्याग्रही का जीवन चरित्र
– रा.बो.

पुस्तक-चर्चा

23. बची हुई रोशनी में
– डॉ. उमाकांत गुप्त

24. **समाचार**

स्मृति-शेष

26. नारीवाद ग्लोरिया स्टीनम नहीं रही

समाचार

27. प्रकृति प्रेमियों का समिति में मिलन



राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

गरीबी की समस्या का हल गांधी मार्ग से

लोगों के जीवन को शायद ही कोई अन्य विषय इतने सीधे तौर पर प्रभावित करता हो जितना अर्थशास्त्र करता है। हालांकि अर्थशास्त्र उस तरह से विज्ञान नहीं है जिस तरह से भौतिकी या रसायनशास्त्र होते हैं। विज्ञान की खोज सर्वत्र एक सी लागू होती है जैसे कोई दवा सभी मरीजों पर एक सी व्याधि पर एक सा असर करती है। इसमें क्षेत्र या संस्कृति का भेद कोई मायने नहीं रखता। किन्तु अर्थशास्त्र के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। अर्थशास्त्र को विज्ञान की तरह नहीं देखा जा सकता। अर्थशास्त्र एक बहुत ही अव्यवस्थित दुनिया को बड़े करीने से मॉडल करने का प्रयास करता है। लेकिन यह मॉडल दुनिया के सारे देशों के लिए एक सा नहीं हो सकता। वह प्रयोगशाला में तैयार नहीं हो सकता। इसीलिए माना जाता है कि गरीबी से निबटने के लिये एक सा अर्थशास्त्र सभी जगह एक सा परिणाम नहीं दे सकता है। मगर अर्थशास्त्री सर्वत्र गरीबी को केवल आर्थिक समस्या मान कर उसके उपचार की व्यवस्था करते हैं। इसलिए गरीबी उन्मूलन की बात करने वालों को यह सुनना अजीब लग सकता है कि गरीबी मुख्यतः आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक समस्या है। यह एक ऐसी समस्या है जिस पर प्रतिक्रियाएं काफी हद तक भावुकता से भरी होती है। हालांकि भावना का त्याग नहीं होना चाहिए, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धिमत्तापूर्ण समझ से भावनाओं को गरीबी दूर करने की प्रेरक शक्ति बनायी जाएं। आज़ादी के बाद जब 'हम भारत के लोग' अपनी तक़दीर के खुद नियंता बने तब से हमने जो भी आर्थिक नीतियां अपनाई वे अर्थ की व्यवस्था का तो ध्यान रखती रही हैं, मगर मगर देश की सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि को नजरंदाज करती रही हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत में जो अर्थ व्यवस्था अपनाई गई वह बाहर की थी। पश्चिम की खुली अर्थव्यवस्था तथा क्रांति से जन्मे सोवियत संघ की आयोजना वाली व्यवस्था को मिला कर इस देश के कर्णधारों ने एक मिली-जुली अर्थव्यवस्था अपना कर भारत के विकास की कल्पना की। तत्कालीन राजनीतिक और अकादमिक समझ को वही उचित लगा। भारतीय सभ्यता में एक व्यवस्था जरूर रही जो किसी सम्पूर्ण एक के नियंत्रण में नहीं रही। सिर्फ नैतिकता का अलिखा आधार उसे थामे रहा। मुग़ल, औपनिवेशिक और सामंती काल में यह नैतिक आधार खिसक गया। अंग्रेजों ने पहली बार सारे भारतीय भूभाग के

लिये एक सी अर्थव्यवस्था बनाने का मोटा प्रयास किया और रियासतों से नियम बना कर काम करने का दबाव बनाये रखा। लेकिन उसमें कानून था मगर नैतिक आधार नहीं था इसलिए उस काल में जो भ्रष्टाचार जन्मा वह आज भी शासन तंत्र की शिराओं में फैला हुआ है। भारत की अपनी ऐसी अर्थव्यवस्था बनाने का कभी नहीं सोचा गया जो यहां की सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुकूल हो। आजादी के बाद मुख्यधारा के अधिकांश सैद्धांतिक अर्थशास्त्रियों ने महात्मा गांधी के विचारों में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई। इसलिए भारतीय अर्थ व्यवस्था में उन तत्त्वों का समावेश कभी नहीं हो पाया जो गांधी की सीख में थे। इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों, राजनीतिक वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को तो गांधी के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचार आकर्षित करते रहे, किन्तु मुख्यधारा के अर्थशास्त्री गांधी के आर्थिक सूत्रों के प्रति पूरी तरह उदासीन रहे हैं। गांधी का अर्थशास्त्र भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों का हिस्सा भी नहीं बना। महात्मा गांधी अर्थशास्त्र के छात्र नहीं थे और उन्होंने खुद स्वीकार किया था कि उन्होंने स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस या मिल जैसे अर्थशास्त्रियों के लेखन का गंभीरता से अध्ययन नहीं किया है। कोई 35 साल की उम्र में जब गांधी दक्षिण अफ्रीका में थे, तब 1904 में हेनरी पोलाक ने उन्हें एक किताब दी थी जिसे गांधी ने जोहान्सबर्ग से डरबन तक की लंबी ट्रेन यात्रा में पूरी पढ़ी। यह किताब जॉन रस्किन की 'अनटू दि लास्ट' थी। गांधी ने बाद में स्वीकार किया कि, इस किताब ने उनके जीवन को हमेशा के लिए बदल दिया। इस किताब में रस्किन ने क्लासिकल अर्थशास्त्रियों, मुख्य रूप से एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो और जॉन स्टुअर्ट मिल की अवधारणाओं को चुनौती दी थी। स्मिथ की अवधारणा का आधार था कि व्यक्ति स्वाभाविक रूप से स्वार्थी होता हैं। मगर रस्किन का मानना था कि भले ही स्वार्थ कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, मनुष्य में स्नेह भी होता है जो एक आंतरिक शक्ति का निर्माण करता है। उनका मानना था कि शास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत मांग और आपूर्ति के नियमों पर चलते हैं, जिसके परिणाम श्रमिकों के लिए दुख का सबब बनते हैं। इस पुस्तक में, रस्किन ने एक ऐसी प्रणाली की वकालत की थी जो सभी का भला करती हो। गांधी के लिए, 'अनटू दि लास्ट' की सबसे महत्वपूर्ण सीख यह थी कि श्रम का जीवन, यानी मिट्टी से जुड़े किसान और हस्तशिल्पकार का जीवन, जीने लायक जीवन होता है। भौतिक दुनिया का यह नैतिक दृष्टिकोण ही गांधी की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के मूल में है।

गांधी ने 1909 में इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका की समुद्री यात्रा के दौरान 'हिंद स्वराज' लिखा। मूल रूप से यह पश्चिमी सभ्यता के खिलाफ एक राजनीतिक आलोचना थी, लेकिन इसमें गांधी के मुख्य आर्थिक विचार भी शामिल थे। ब्रिटिश सरकार ने इस पुस्तिका पर प्रतिबंध लगा दिया था। 1948 में गांधी के निधन तक उनके कई विचार विकसित होते रहे, लेकिन मुख्य विचार कमोबेश अपरिवर्तित रहे। गांधी भारतीय गांवों को आत्मनिर्भर गणराज्यों के रूप में विकसित करना चाहते थे। गांधी इच्छाओं को सीमा में बांधने के पक्षधर थे। उनका यह विचार पश्चिम की मुख्यधारा के अर्थशास्त्र के उस केंद्रीय विचार के ठीक विपरीत था, जिसमें असीमित इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए वस्तुओं के विस्तार की अवधारणा थी। आधुनिक पूंजीवाद मुख्य रूप से वस्तुओं और सेवाओं के बड़े पैमाने पर उपभोग की वकालत करता है। किन्तु गांधीवादी दृष्टिकोण में, बस कुछ ही पर्याप्त होता है। इच्छाओं की सीमा की गांधीवादी

अवधारणा मूल रूप से सनातन समाज की तपस्या की धारणा से जुड़ी है। गांधी के लिए अर्थशास्त्र एक ऐसा मानक विषय था जो अनिवार्य रूप से नैतिकता की अवधारणा से जुड़ा हुआ था। भारतीय सनातन परंपरा से देखें तो ऐसा संभव है। अर्थशास्त्र को अनिवार्य रूप से एक नैतिक या नैतिक विषय के रूप में देखने का गांधीवादी विचार अपने सहज रूप में शास्त्रीय और नवशास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत के साथ जुड़ाव के बिना भी पूरी तरह से गलत नहीं है। पिछले सौ सालों में देश के क्षितिज पर शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हुआ हो जिसने महात्मा गांधी की तरह खेतों और कारखानों, किसानों और कारखाने के मजदूरों को इतनी गहराई से जाना हो। गांधी का आर्थिक सिद्धांत भारतीय वस्तुगत परिस्थितियों की उनकी अपनी समझ से उभरा था। इसलिये, उनके सूत्र पूरी तरह से धरती से जुड़े थे। उनका स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस और मिल के लेखन से कोई लेना-देना नहीं था। अनोखी बात यह है कि गांधीवादी संरचनाओं के मुख्य और सबसे बड़े असंतुष्ट कोई और नहीं बल्कि जवाहरलाल नेहरू थे, जिन्हें गांधी ने चुना था। नेहरू ने इस मुद्दे पर गांधी से कभी खुलकर बात नहीं की, भले ही उन्होंने गांधी को अपना सर्वोच्च गुरु माना था। नेहरू आधुनिकतावादी थे जो 1910-12 के दौरान लंदन में वकील बनने की पढ़ाई करते हुए फैबियन समाजवाद की ओर आकर्षित हुए थे। नेहरू ने पहली बार देखा कि 1917 की अक्टूबर क्रांति के बाद सोवियत संघ किस तरह से एकीकरण करने में सक्षम हुआ, तब से वे विकास के नियोजन के सोवियत विचार से बहुत प्रभावित रहे। नेहरू ने सोवियत संघ के निमंत्रण पर 1927 में संघ की 10वीं वर्षगांठ समारोह में रूस का दौरा किया था। सोवियत संघ ने 1928 में अपनी पंचवर्षीय योजनाएं शुरू कीं और 1930 के दशक की शुरुआत में उनके परिणाम काफी चौंकाने वाले आये थे। जब कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाष चंद्र बोस ने 1938 में राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया, तो उसका नेतृत्व करने वाले व्यक्ति जवाहरलाल नेहरू ही थे। भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान, नेहरू ने पूंजीगत वस्तुओं के क्षेत्र को प्राथमिकता देने की फेल्डमैन-महालनोबिस रणनीति का समर्थन किया। लेकिन इस बात के भी प्रमाण हैं कि अपने जीवन के अंतिम वर्षों में, नेहरू कृषि और ग्रामीण उद्योगों पर गांधी के नज़रिये की ओर झुकने लगे थे। नेहरू के नज़रिये में आए बदलाव को जानने के लिये हमें 1961 में लिखी गई तीसरी पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र के पहले पृष्ठ को देखने की जरूरत है, जिस पर नेहरू की मुहर थी, और संभवतः यह आर्थिक क्षेत्र में नेहरू की आखिरी प्रमुख बौद्धिक गतिविधि भी थी। इतिहास में दर्ज है कि इस आयोजना के इस दृष्टिकोण दस्तावेज़ ने 1961 में कृषि क्षेत्र पर फिर से जोर दिया।

गांधी के कई उल्लेखनीय अनुयायी भी थे, जिनमें जे. सी. कुमारप्पा भी शामिल थे, जिन्होंने 1928 में कोलंबिया से अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की थी और वे जाने-माने सार्वजनिक वित्त सिद्धांतकार एडविन सेलिगमैन के छात्र थे। गांधीवादी अर्थशास्त्र शब्द का आविष्कारक कुमारप्पा को ही माना जाता है। उनके कई अन्य अनुयायी भी थे, लेकिन उनमें से कुछ के गांधी से मतभेद भी थे और यह उन उग्र स्वतंत्रता संग्राम के वर्षों के बौद्धिक माहौल का एक हिस्सा था। यह एक लंबी सूची होगी, लेकिन कुछ उल्लेखनीय नाम गिनाये जा सकते हैं जैसे जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, राम मनोहर लोहिया, आचार्य नरेंद्र देव, यूसुफ मेहरली और एम. एल. दांतवाला। बाद के वर्षों में, गांधीवादी आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में कई

महत्वपूर्ण अध्ययन भी हुए हैं। गांधी के विचारों के दो पहलू विशेष उल्लेखनीय हैं। गांधी ने पूंजीपति वर्ग के लिए ट्रस्टीशिप की अवधारणा की वकालत की थी, जिसमें अपेक्षा थी कि वे अपने संयंत्र और मशीनरी तथा अपनी संपत्ति का उपयोग आम तौर पर अपने निजी उपयोग के लिए नहीं, बल्कि सार्वजनिक उद्देश्य और आम जनता की भलाई के लिए करेंगे। यह वह अवधारणा थी जिसे गांधी ने समाजवाद के अपने संस्करण के रूप में पेश की थी। उनका मानना था कि इससे उनके सपनों का रामराज्य आएगा, जिसमें राजकुमार और भिखारी दोनों के अधिकार समान रूप से सुनिश्चित होंगे। इस विचार की नेहरू, जयप्रकाश नारायण और गुन्नार मिर्डल सहित कई अन्य लोगों ने कड़ी आलोचना की थी। जयप्रकाश नारायण की प्रतिक्रिया विशेष रूप से तीखी थी।

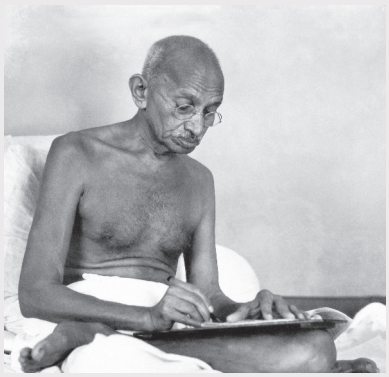
पूंजीवाद को विधिक विनियामक नियंत्रण के तहत काम करने की ज़रूरत होती है, लेकिन ट्रस्टीशिप का विचार उन नैतिक सीमाओं की ओर भी इशारा करता है जिसके भीतर सिस्टम को काम करना चाहिए। गांधी के ट्रस्टीशिप विचार की गहराई से जांच से पता चलता है कि यह शायद उतना अजीब नहीं है जितना वह पहली नज़र लगता है। पूंजीपति विलासिता की खपत में लिप्त होने लगता है। ऐसा होना ज़रूरी है क्योंकि ज़रूरतों की खपत जैविक रूप से सीमित है और पूंजीवाद के पहिये को चालू रखने के लिए खर्च के नए रास्ते बनाने होते हैं। इस प्रकार, विलासिता की नई नई वस्तुओं का विकास तकनीकी प्रगति का एक अनिवार्य हिस्सा होता है। संग्रहण को उत्तेजित करने वाली वही इच्छा, खपत के उच्च स्तरों को भी उत्तेजित करती है। मार्क्स के अनुसार पहले चरण में, अमीर बनने की इच्छा – लोभ – एक प्रमुख जुनून होता है। दूसरे चरण में, विलासिता के दिखावे को बनाए रखने की लागत का हिस्सा होती है। पहले चरण में, पूंजी के रूप में धन का स्वामित्व श्रमिक वर्ग के श्रम पर उसकी शक्ति होता है, जबकि दूसरे चरण में, पूंजीपति द्वारा विलासिता की खपत का प्रदर्शन भी उसकी शक्ति का स्रोत होता है, क्योंकि यही भेद उसे श्रमिक से अलग करता है।

भारत की आज़ादी के इतने सालों बाद यह कहना गलत नहीं होगा कि हम निचले पायदान पर रहने वाले लोगों को बेहतर जीवन जीने का बुनियादी ज़रिया मुहैया कराने से अब भी बहुत दूर हैं। गांधी ने जो सवाल उठाए थे, वे आज भी आश्चर्यजनक रूप से प्रासंगिक हैं। आर्थिक सिद्धांतकारों की वर्तमान पीढ़ी में से क्या कुछ लोग गांधी के लिए गहरी चिंता के कम से कम कुछ मुद्दों की जांच करने के लिए अपना ध्यान केंद्रित करेंगे और देखेंगे कि क्या ग़रीबों में से सबसे ग़रीब लोगों के बीच मानवीय स्थिति में सुधार की कोई वास्तविक संभावना हो सकती है?

गांधी की दृष्टि आज भी आधुनिकता के विमर्श को एक नया मोड़ दे सकती है क्योंकि वह हमें उस संतुलन को बहाल करने में सक्षम बना सकती है जिसे हमने आधुनिकीकरण के उन्मादी तकनीकी मॉडल के कारण खो दिया है। ❑

मैं केवल सत्य का शोधक हूं!

❑



❑
महात्मा गांधी

महात्मा गांधी के लेखों और टिप्पणियों में से सहेज कर बने इस आलेख से हम बापू को खुद उनकी निगाह से देख सकते हैं। सं.

मैं केवल सत्य का शोधक हूं। मेरा दावा है कि मुझे सत्य का रास्ता मिल गया है। मेरा दावा है कि मैं सत्य को पाने का सतत प्रयत्न कर रहा हूं। परंतु मैं स्वीकार कर्ता हूं कि मुझे अभी टाक वह मिला नहीं है। सत्य को पूरी तरह प्राप्त कर लेना अपने को और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेना है, अर्थात सम्पूर्ण हो जाना है। मुझे अपनी अपूर्णताओं का दुखद भान है। और इसी में मेरा सारा बल समाया हुआ है, क्योंकि अपनी मर्यादाओं को जां लेना मनुष्य के लिये दुर्लभ वस्तु है।

अगर मैं पूर्णता प्राप्त कर चुका होता, तो मैं मानता हूं कि मुझे अपने पड़ोसियों के, आस-पास ले लोगों के दुख-दर्द का वैसा अनुभव नहीं होता, जैसा कि अभी मुझे होता है। पूर्णता की स्थिति में उनके दुखों को देखता, देखकर उन्हें अपने ध्यान में रखता, उपाय का निर्देश कर देता और अपने असंदिग्ध सत्य के बल से लोगों द्वारा उस पर अमल कराता। परंतु अभी तक मुझे इतना ही धुंधला दिखाई देता है जितना कांच में से दिखाई देता है और इसलिए मुझे धीरे-धीरे और परिश्रमपूर्ण क्रियाओं द्वारा अपनी बात मनवाली पड़ती है और फिर भी हमेशा इसमें सफलता नहीं मिलती। ऐसी हालत में यह जानते हुए कि देश में ऐसा दुख फैला हुआ है, जो दूर किया जा सकता है और यह देखते हुए कि विश्व नियंता की आंख के नीचे ही नर-कंकाल मौजूद हैं, अगर मैं भारत के इन करोड़ों पीड़ित किन्तु मूक मानव-प्राणियों के साथ हमदर्दी न रखूं और उनके दुख से दुखी न होऊं तो मैं अपनी मनुष्यता से गिर जाऊंगा।

मैं तो अपने पथ पर कठिनाई से बढ़ रहा एक ऐसा दुर्बल प्राणी हूं, जो पूरी तरह शुद्ध और सात्विक बनने के लिये तड़प रहा है, जो पूरी तरह मन-कर्म-वचन से सत्यपरायण और अहिंसक बनना चाहता है, परंतु जिस आदर्श को वह सच्चा मानता है उस तक पहुंचने में सदा असफल रहता है। यह एक कष्टपूर्ण चढ़ाई है, परंतु मेरे लिये इसका कष्ट एक सच्चा आनंद है। ऊपर की ओर एक-एक कदम बढ़ाने पर मुझे पहले से ज्यादा शक्ति महसूस होती है और अगला कदम उठाने की योग्यता प्राप्त होती है।

मुझे रास्ता मालूम है। वह कठिन और तंग है। वह खांडे की धार

की तरह दुर्गम है। मुझे उस पर चलने में मजा आता है। जब फिसल जाता हूं तो रोता हूं। ईश्वर का अभय-वचन है कि जो प्रयत्न कर्ता है उसका कभी णाष नहीं होता। मुझे इस वचन में अटूट श्रद्धा है। इसलिए यद्यपि मुझे अपनी कमजोरी के कारण हजार बार असफलता मिलती है, फिर भी मैं श्रद्धा नहीं छोडूंगा और आशा रखूंगा कि किसी न किसी दिन जब इंद्रियां पूरी तरह मेरे काबू में आ जाएंगी, तब मुझे इस प्रकाश का दर्शन अवश्य होगा।

मैंने उस अंतर्यामी को देखा नहीं है और न उसे जाना है। मैंने ईश्वर में दुनिया का जो विश्वास है उसी को अपना लिया है, और चूंकि मेरी श्रद्धा अमिट है इसलिए उस श्रद्धा को मैं अनुभव के समान समझता हूं। परंतु चूंकि इसके खिलाफ यह आक्षेप किया जा सकता है कि श्रद्धा का अनुभव बताना सत्य का अपलाप है, इसलिए शायद यह कहना अधिक सही होगा कि ईश्वर में अपने अपने विश्वास का ठीक वर्णन करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं है।

मेरा दावा है कि मैं बचपन से ही सत्य का पुजारी हूं। मेरे लिये यह सबसे सहज और स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्तिपूर्ण खोज ने मुझे ईश्वर सत्य है के प्रचलित मंत्र के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' का अधिक गहरा मंत्र दिया। यह मंत्र मुझे ईश्वर को मानो अपनी आंखों के सामने प्रत्यक्ष देखने की क्षमता पेयदान करता है। मैं अनुभव कर्ता हूं कि वह मेरी राग-राग में समाया हुआ है।

अहिंसा मेरा ईश्वर है और सत्य मेरा ईश्वर है। जब मैं अहिंसा को ढूंढता हूं तो सत्य कहता है, मेरे द्वारा उसे खोजो। जब मैं सत्य की तलाश कर्ता हूं तो अहिंसा कहती है मेरे जरिए उसे खोजों।

ऐसे सर्वव्यापी सत्यनारायण का साक्षात्कार करने के लिये मनुष्य के मन में छोटे से छोटे प्राणी के प्रति अपने ही जैसा प्रेम होना चाहिए। और जो मनुष्य इसकी आकांक्षा रखता है वह जीवन के किसी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। किसी कारण से मेरे सत्यप्रेम ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में घसीट लिया है, और मैं बिना संकोच के किन्तु पूरी नम्रता के साथ कह सकता हूं कि जो लोग यह कहते हैण कि धर्म का राजनीति के साथ कोई संबंध नहीं है वे नहीं जानते कि धर्म का क्या अर्थ है।

मैं मानव-जाति की सेवा के द्वारा ईश्वर-दर्शन का प्रयत्न कर रहा हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि ईश्वर न तो ऊपर स्वर्ग में है, न नीचे किसी पाताल में; वह तो हर एक के हृदय में विराजमान है।

मुझे पृथ्वी के नश्वर राज्या की कोई आकांक्षा नहीं है। मैं तो स्वर्ग के राज्य अर्थात मोक्ष के लिये प्रयत्न कर रहा हूं। मुझे उद्देश्य की पूर्ति के लिये किसी गिरि-गुफा की शरण लेने की आवश्यकता नहीं है। अगर मैं समझ सकूँ तो वह गुफा मेरे भीतर ही मौजूद है। गुफावासी गुफा में रहते हुए भी मन के महल बना सकता है, जबकि जनक जैसा महल में रहने वाला ऐसा नहीं करता। गुफा में रहने वाला विचार के पंखों पर बैठ कर संसार का चक्कर लगाता रहे, तो उसे शांति नहीं मिलती। लेकिन जनक जैसे लोग 'शान-शौकत' से रहते हुए भी अकल्पनीय शांति प्राप्त कर सकते हैण। मेरे लिये मोक्ष का मार्ग यही है कि मैं अपने देश की और देश के द्वारा मानव-जाति की सेवा के लिये अविश्रांत परिश्रम कर्ता रहूं। मैं सब प्राणियों के साथ एकता स्थापित करना चाहता हूं।

मैं न केवल मानव कहलाने वाले प्राणियों के साथ ही भाईचारा या एकता महसूस करना चाहता हूं, बल्कि सब प्राणियों के साथ, यहां तक कि पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों के साथ एकता साधना चाहता हूं। आपको आघात न पहुंचे तो मैं यह कहूंगा कि पृथ्वी पर रेंगने वाले प्राणियों के साथ एकता इसलिए चाहता हूं कि हम एक ही ईश्वर की संतान होने का दावा करते हैण और अगर ऐसा है तो नाम-रूप कुछ भी हों, समस्त प्राणी वास्तव में एक ही हैं।

गाँधीवाद जैसी कोई वस्तु नहीं है और मैं अपने पीछे कोई संप्रदाय चूड़कर नहीं जाना चाहता। मेरा यह दावा नहीं है कि मैंने कोई नया सिद्धांत या धर्म निकाला है। मैंने अपने ढंग से केवल सनातन सत्यों को दैनिक जीवन और उनकी समस्याओं पर लागू करने की कोशिश की है। सत्य और अहिंसा यानादी काल से चले आए हैं। मैंने केवल भरसक विशाल पैमाने पर इन दोनों के प्रयोग करने की कोशिश की है। इस प्रकार जीवन और उसकी समस्याएं मेरे लिये सत्य और अहिंसा के अभ्यास के अनेक प्रयोग बन गईं हैं।

सत्य और अहिंसा में मेरी श्रद्धा दिन-दिन बढ़ रही है। और ज्यों-ज्यों मैं उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न कर रहा हूं, त्यों-त्यों प्रत्येक क्षण मेरा भी विकास हो रहा है। मुझे उसके नए-नए गूढ़ार्थ सूझ रहे हैं। मुझे उनमें रोज नई रोशनी नज़र आती है और नए-नए अर्थ मालूम होते हैं।❑



गांधी को एकाधिकार दावा अस्वीकार

❑
डॉ. लता व्यास

महात्मा गांधी और एक अंग्रेज महिला के बीच हुए संवाद को आज फिर सुनने की जरूरत है। यह संवाद फरवरी 1929 में तब हुआ जब भारत की आजादी की किसी को कोई संभावना नहीं लगती थी। भारत में काफी घूमने फिरने के बाद भारत से सहानुभूति रखने वाली इंग्लंड की लेबर पार्टी की सदस्य उस महिला ने गांधी को छेड़ते हुए पूछा आप तो जरूर चाहेंगे कि हम इस देश से बिल्कुल निकल जाएं?

गांधी ने प्रश्न का कठोर व्यंग्य दरकिनार करते हुए बड़ी सहजता से कहा: नहीं, मैं तो आपके अनुमान के विपरीत अंग्रेजों को यहां रखना चाहूंगा। लेकिन हां, मैं अपनी शर्तों पर ही उन्हें यहां रहने दूंगा।

गांधी की शर्तें थीं: तब वे (अंग्रेज) यहां आज की तरह, स्वामियों और मालिकों की तरह नहीं बल्कि सच्चे जन-सेवकों की तरह रह सकेंगे स्वतंत्र भारत में अंग्रेजों को इस धरती के बेटों के साथ समान हैसियत से रहने की तैयारी रखनी पड़ेगी मेरा मतलब यह है कि उन्हें उन सारी सुविधाओं का परित्याग करना पड़ेगा जिनका आज वे शासक-वर्ग का सदस्य होने के नाते उपभोग कर रहे हैं।

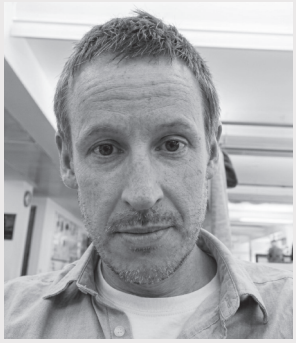
महिला ने जब यह पूछा कि यह भी हो सकता है कि वैसी शर्तों पर वे यहां रहना पसंद न करें? आप क्या यह नहीं सोचते कि भारत को इंग्लैंड अभी बहुत कुछ सिख सकता है – कुछ चीजें तो ऐसी है कि जिनमें उसे विशेष दक्षता प्राप्त है, तब गांधी ने उससे अपना सवाल थोड़ा खोल कर पूछने का कहा। इस पर उस महिला ने कहा मेरा कहना है कि इंग्लैंड में राजनीतिक चेतना का जैसा स्तर है, लोकतान्त्रिक संस्थाओं का जैसा विकास हुआ है, लोकतान्त्रिक व्यवस्था का जैसा कुशल प्रबंध वहां व्याप्त है, वह सारी श्रेष्ठता क्या ऐसी नहीं है कि जिससे हिंदुस्तान सीख सकता है?

गांधी ने उस महिला के उफनते उत्साह पर कोई टिप्पणी किए बगैर कहा कि राजनीतिक ज्ञान पर अंग्रेजों के इस एकतरफा अधिकार के दावे को मैं कैसे कबूल करूं? अगर मैं यह कहूं कि ऐसा मानना इस युग के महानतम अंधविश्वासों में से एक है, तो आप बुरा मत मानिएगा। मुझे ताज्जुब तो इस बात पर होता है कि बहुत से समझदार अंग्रेज भी ऐसे अंधविश्वास पर विश्वास करते हैं। ब्रिटेन की राजनीतिक संस्थाओं में बहुत कुछ ऐसा है जिसकी मैं स्वयं प्रशंसा करता हूं। लेकिन उनमें वे जड़ वस्तुएं नहीं हैं जिनका आप ज़िक्र कर रही थीं। मैं यह नहीं मानता हूं कि आपकी ये संस्थाएं किसी भी कसौटी पर आदर्श उतरती हैं या ये ऐसी नायाब हैं कि भारत को हर कीमत पर इन्हें अपना लेना चाहिए। अंग्रेज तो खुद ही अपने देश में इन संस्थाओं को पूरी तरह सफल नहीं बना सके है। फिर सारा संसार इन्हें लोकतंत्र का बेहतरीन नमूना मानकर अपना ले, यह कैसे संभव है? मैं आपको याद दिला दूं कि कुछ ऐसे अंग्रेज भी हैं जो यह स्वीकार करते हैं कि ब्रिटिश संसद उन सारी आशाओं को पूरा नहीं कर पाई जिसकी उससे अपेक्षा थी।

इस पर महिला बोली: चलिए श्रेष्ठता वाली बात मैं छोड़ देती हूं। क्योंकि मैं मानती हूं कि यह तो अभिव्यक्ति की ऊपरी बात भर है, लेकिन क्या आपको यह नहीं लगता कि अंग्रेज कुछ एक मामलों में, जिनमें भारत सही मानी में पिछड़ा हुआ है, भारत की मदद नहीं कर सकते?

गांधी का सटीक जवाब था: इंग्लैंड बहुत तरह से भारत की मदद कर सकता है, मैं इससे इंकार नहीं करता। मैं तो केवल उसके एकाधिकार के दावे को अस्वीकार करता हूं। ब्रिटेन की राजनीतिक संस्थाओं में जो कुछ भी श्रेष्ठ है, वह सारे विश्व के सामने है ही और वह चाहे जब उसकी नकल कर सकता है। लेकिन महज राजनीतिक ज्ञान की शिक्षा देने के लिये अंग्रेजों को शासक बन कर भारत आने की कोई जरूरत नहीं है। उसके पास जो कुछ ऐसा है कि जिसे भारत को ग्रहण करना चाहिए, वह स्वाभाविक रूप से उसे आत्मसात् करेगा। उसे बलात् उस पर थोपा जाए, यह न तो उसे स्वीकार्य होगा, न ऐसा किया ही जाना चाहिए। मिसाल के तौर पर कहूं तो कह सकता हूं कि चित्रकला के काम में चीनी निपुण होते हैं, इस पर उनकी असाधारण पकड़ है। मैं मानता हूं कि सारी दुनिया को उसकी प्रशंसा भी करनी चाहिए और उसका अनुसरण भी करना चाहिए। अब मैं आप से पूछता हूं कि कल को चीनी लोग आएं और इंग्लैंड को ललित कलाओं की शिक्षा देने का दावा करते हुए इंग्लैंड पर कब्जा कर लें, तो क्या आप उसे कबूल करेंगी? मैं जानता हूं कि आप उसे कबूल नहीं करेंगी। या करेंगी?❑

एआई से नफ़रत है तो उससे तौबा क्यों नहीं?



❑
विल डगलस हेवन

एमआईटी टेक्नोलॉजी रिव्यू के संपादक एआई को लेकर बहुत अधिक बेचैन नहीं हैं और कहते हैं कि आने वाले समय में हमें और भी बहुत कुछ अलग देखने को मिलेगा। सं.

❑

मैं दुनिया भर में, एआई को लेकर अभी प्यार-नफरत वाला रवैया बहुत ज़्यादा है। प्यू रिसर्च सेंटर के मुताबिक, अमेरिका में ज़्यादातर वयस्क लोग सोचते हैं कि एआई का उन पर व्यक्तिगत और आम तौर पर समाज पर नकारात्मक असर पड़ेगा, और वे पॉज़िटिव असर की उम्मीद नहीं करते। यह निराशा युवाओं में सबसे ज़्यादा है।



स्टैनफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी की एक रिपोर्ट के मुताबिक, दुनिया भर में आधे से ज़्यादा लोग कहते हैं कि एआई उत्पाद और सेवाएं उन्हें परेशान करती हैं। मई में एक गैलप पोल में, अमेरिका के 71 प्रतिशत वयस्क लोगों ने कहा कि वे अपने इलाके में एक नए एआई डेटा सेंटर के निर्माण का विरोध करेंगे। यह उन 53 प्रतिशत लोगों से कहीं ज़्यादा है जिन्होंने कहा कि वे एक नए न्यूक्लियर पावर प्लांट का विरोध करेंगे। गत मार्च में एक एनबीसी पोल में, एआई, आईसीई से कम लोकप्रिय था। फिर भी एआई इस्तेमाल करने वालों की संख्या अभी आसमान छू रही है। मार्केट एनालिसिस फर्म सेंसर टावर के मुताबिक, मई में चैट जीपीटी के मासिक उपयोगकर्ताओं की संख्या एक बिलियन तक पहुंच गई। गूगल डीपमाइंड का जेमिनी भी इसके ठीक पीछे है, जिस पर जुलाई में 950 मिलियन यूज़र्स ने लॉग किए।

प्यू के मुताबिक, अब अमेरिका के आधे वयस्क कहते हैं कि वे चैटबॉट यूज़ करते हैं, जो 2023 में ऐसा कहने वालों की संख्या से दोगुना से भी ज़्यादा है। चार में से एक व्यक्ति कहता है कि वह हर दिन ऐसा करता है। अब तो यह एक ग्लोबल आदत बन गई है। दुनिया के सबसे अमीर डेमोक्रेसी के समूह - आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) के सभी 38 देशों के एक तिहाई से ज़्यादा वयस्कों ने पिछले तीन महीनों में जेनरेटिव एआई



टूल्स का उपयोग किया है।

ये सभी सर्वे दो अलग-अलग सच दिखाते हैं। एक तो बहुत से लोगों को एआई पसंद नहीं है, और दूसरे बहुत से लोग इससे तृप्त भी नहीं हो पा रहे हैं। तो ये क्या हो रहा है? हो सकता है कि ये दो अलग-अलग ग्रुप हों, लेकिन मुझे शक है। यह भी हो सकता है कि जितने ज़्यादा लोग एआई का इस्तेमाल करेंगे, उसके बारे में उनकी राय उतनी ही नेगेटिव होगी। इसे सपोर्ट करने के लिए कम से कम एक कोरिलेशन तो है। ग्लोबल नॉर्थ, जहाँ इसे अपनाने की दर सबसे ज़्यादा है, वहां लोग ज़्यादा नेगेटिव हैं। ग्लोबल साउथ में, जहां इसे अपनाने का लेवल कम है, लोग ज़्यादा पॉजिटिव हैं। लेकिन मुझे लगता है कि असल में हो यह रहा है कि जब लोग कहते हैं कि उन्हें एआई से नफ़रत है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें टेक्नोलॉजी पसंद नहीं है, बल्कि इसके पीछे की कंपनियों की लगातार इन कोशिशों का विरोध है जिनसे वे इस तकनीक को हम पर थोपने का प्रयास कर रही है। कंपनियां हमें पीढ़ियों में सबसे बड़े सोशल और इकोनॉमिक उतार-चढ़ाव के लिए तैयार रहने को कह रही हैं। वे लोगों से कैसा महसूस करने की उम्मीद करते हैं? कई मायनों में, हम पहले भी यहाँ रहे हैं। हमने पिछले 20 सालों में सोशल मीडिया के साथ भी ऐसा ही डायनामिक देखा है। अरबों लोग फ़ेसबुक और ट्विटर पर आए, जबकि उन कंपनियों के खिलाफ़ टेकलैश बढ़ रहा था जो ये सर्विस चलाती थीं। गूगल सर्च के लिए भी यही बात है। सोशल मीडिया के साथ कोई भी ज़्यादा कुछ नहीं कर सकता था। किसी प्लेटफ़ॉर्म को छोड़ने का मतलब था अपना सारा कंटेंट और कनेक्शन खोना, जिससे आपके पास इसे सहने या फिर से शुरू करने का ऑप्शन होता था। लेकिन एआई के साथ अभी भी लोगों के पास कुछ असर डालने का मौका है।

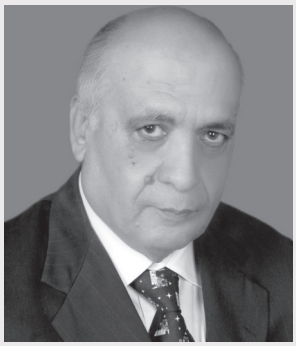
इस बार रेगुलेशन के लिए पक्की राजनैतिक इच्छाशक्ति ज़्यादा है। सभी 50 अमेरिकी राज्यों ने एआई के डेवलपमेंट और डिप्लॉयमेंट को कंट्रोल करने वाले कानून या तो पास किए हैं या प्रपोज़ किए हैं, जिससे पूरे देश में 2,100 से ज़्यादा बिल बन गए हैं। यह तीन साल में दस गुना बढ़ोतरी है।

और गूगल ओपन एआई और एंथ्रोपिक के कई टॉप-क्लास ओपन-सोर्स ऑप्शन पहले से ही बाज़ार में हैं, इसलिए (कम से कम अभी के लिए) ज़्यादा कंज्यूमर चॉइस और उसके साथ आने वाले मार्केट प्रेशर की भी संभावना है।

मैं भोला नहीं बनना चाहता। ट्रिलियन-डॉलर कंपनियों को हिलाना मुश्किल होता है। लेकिन आगे जो होगा वह उतना ज़रूरी नहीं है जितना वे कंपनियाँ अक्सर बताती हैं। जब मैंने स्प्रिंगबोर्ड्स के प्रमुख कार्यकारी अधिकारी से पूछा कि अगर उन्हें एआई सच में पसंद नहीं है तो उनकी फर्म नया मॉडल क्यों बना रही है, तो उन्होंने मुझे बताया कि एलएलएम से पीछे हटने का कोई रास्ता नहीं है, लेकिन आप फिर भी उनसे कुछ अलग करवा सकते हैं। उम्मीद है कि हमें और भी बहुत कुछ अलग देखने को मिलेगा। एआई जो इस बारे में साफ़ हो कि वह क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता है और, सबसे ज़रूरी बात, ऐसा दिखावा न करे जैसे वह दुनिया पर कब्ज़ा करने वाला है।❑

साइंस बनाम विज्ञान !

❑



❑

डॉ. अरविन्द कुमार पुरोहित

स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर के पूर्व प्रोफेसर तथा कृषि शिक्षा प्रसार शिक्षा के निदेशक रह चुके लेखक कह रहे हैं कि भारतीय सन्दर्भ में साइंस और विज्ञान एक नहीं, बल्कि अलग अर्थ रखते हैं। सं.

भारत के लिए आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलॉजी का विकास अत्यंत आवश्यक है। जिस आधुनिक विज्ञान ने बिजली, संचार, चिकित्सा, परिवहन, अंतरिक्ष-विज्ञान, कंप्यूटर और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी असंख्य सुविधाएं मनुष्य को दी हैं, उसके महत्व से इनकार करना न तो संभव है और न ही उचित।

आधुनिक साइंस बनाम भारतीय विज्ञान का झगड़ा ही गलत है। साइंस और विज्ञान एक ही हैं। साइंस अंग्रेज़ी शब्द है और विज्ञान उसका हिंदी अनुवाद। यह प्रस्थापना कि आधुनिक साइंस और टेक्नोलॉजी हमारे प्राचीन ग्रंथों में पहले से ही मौजूद है भी बेमानी है। भारत में जो शोध और अनुसंधान की समृद्ध परंपरा रही है उसकी मेथोडोलॉजी बिलकुल अलग थी और जो भी साम्य आधुनिक पश्चिमी साइंस के साथ मिलते दिखाई देते हैं, वे संयोगवश हैं।

विज्ञान की भारतीय अवधारणा गीता में मिलती है, जिसके अनुसार ज्ञान



और विज्ञान के बिल्कुल अलग अर्थ हैं। ज्ञान मतलब अपरा, सांख्य या सृष्टि, और विज्ञान मतलब परा या सृष्टिकर्ता को समझना। इसके साथ ही कुछ बातें और जुड़ती है, जैसे, जो सृष्टि या भौतिक जगत के विकास में योगदान दे उसे ज्ञान कहेंगें, जो सृष्टि और सृष्टिकर्ता के बीच सम्बन्ध की बात करे, उसे विज्ञान कहेंगें। यानी विज्ञान मूल रूप से एक आस्तिक चिंतन है, जिसमे एक सृष्टि है, और एक सृष्टि का रचेता है। जबकि साइंस मूल रूप से नास्तिक चिंतन है जिसमे, आत्मा, परमात्मा जैसे विषयों को मेटा फिजिक्स बता कर अवैज्ञानिक और अंधविश्वास घोषित किया गया।

वामपंथी विचारधारा ने नास्तिकवाद को पोषित किया। जब प्रगतिशील चिंतन ने धर्म को मानव जीवन का अफीम बता कर शोषण का प्रमुख औजार घोषित किया तो नास्तिक विचारधारा स्वतः ही एक संस्थागत रूप लेती चली गयी और प्रगतिशील साहित्य और पश्चिमी विज्ञान जाने-अनजाने नास्तिक दर्शन का समर्थक बनते चले गए। ज़रूरी नहीं कि साहित्यकार या वैज्ञानिक नास्तिक रहे हों, लेकिन विचारधारा का गोमुख नास्तिक दर्शन रहा।

साइंस और टेक्नोलॉजी सही मायनों में निरपेक्ष होते हैं। टीवी पर आप जो मर्जी देखो, चाहे भजन सुनो, प्रेमानंद जी महाराज के प्रवचन सुनो, सद्गुरु के वीडियो देखो या जावेद अख्तर के नास्तिकवाद पर इंटरव्यू देखो। इसी तरह इंटरनेट है, जो और भी ज़्यादा निरपेक्ष है।

सवाल यह नहीं है कि साइंस सही है या विज्ञान। सवाल यह है कि

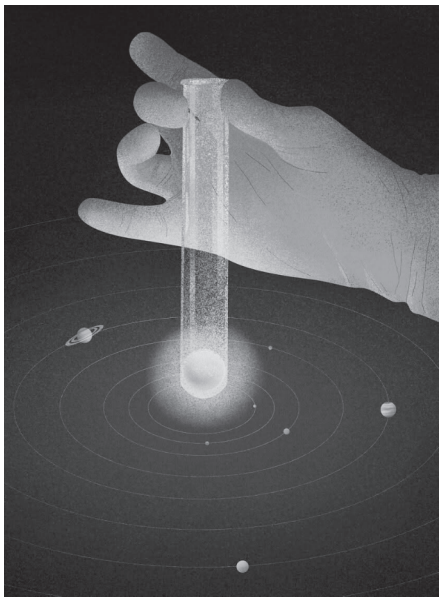


क्या मनुष्य के पास ज्ञान प्राप्त करने का केवल एक ही रास्ता हो सकता है?

आधुनिक साइंस ने प्रकृति को समझने की जो पद्धति विकसित की, वह असाधारण रूप से सफल रही है। आधुनिक चिकित्सा से लेकर अंतरिक्ष-विज्ञान तक, कंप्यूटर से लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता तक, उसके परिणाम हमारे सामने हैं। इसलिए उसे नकारने का प्रश्न ही नहीं उठता।

लेकिन एक दूसरी सच्चाई भी है। आज हम जिन विषयों को साइंस के नाम से पढ़ाते हैं, उनकी आधुनिक संस्थागत संरचना और उनकी विशिष्ट शाखाएं मूलतः पश्चिम में विकसित हुईं। बॉटनी इसका एक सीधा उदाहरण है। भारत में वनस्पतियों का ज्ञान हजारों वर्षों से रहा है ¯ औषधीय पौधों का ज्ञान, कृषि का ज्ञान, वृक्षों और उनके उपयोग का ज्ञान। लेकिन आधुनिक अर्थ में बॉटनी एक अलग विषय है, जिसकी अपनी वर्गीकरण-पद्धति, पौधों की बनावट और संरचना का अध्ययन, शरीर-क्रियाओं का अध्ययन, आनुवंशिकी, पर्यावरण-विज्ञान और प्रयोगात्मक पद्धति है। विषय और शोध का मॉडल पश्चिम है।

इसी तरह प्लांट फिजियोलॉजी को हम हिंदी में पादप क्रिया-विज्ञान कह दें, तो नाम भारतीय हो जाता है; विषय की उत्पत्ति और उसकी अध्ययन-पद्धति नहीं बदलती। वह आधुनिक जीव-विज्ञान की उसी धारा का हिस्सा है जिसमें पौधों में प्रकाश-संश्लेषण, जल और खनिजों का परिवहन, चयापचय, हार्मोन, वृद्धि और कोशिकीय प्रक्रियाओं का प्रयोगात्मक अध्ययन किया जाता है। विषय और



शोध का मॉडल पश्चिम है। यही स्थिति कृषि एवं अन्य विषयों की है।

यह फर्क छोटा नहीं है। किसी आधुनिक साइंस का हिंदी नाम रख देने से वह भारतीय विज्ञान नहीं बन जाता। और किसी प्राचीन भारतीय ज्ञान को इसलिए साइंस कहना भी जरूरी नहीं कि आज उसकी कोई बात आधुनिक साइंस से मिलती-जुलती दिखाई दे रही है। दोनों के अपने इतिहास को सम्मान देना ही ईमानदार रास्ता है।

लेकिन यहीं से एक बहुत बड़ा अवसर पैदा होता है। हमें पश्चिमी साइंस को हटाना नहीं है। हमें वर्तमान वैज्ञानिक व्यवस्था को रोकना नहीं है। हमें यह भी नहीं कहना है कि आज की हर वैज्ञानिक उपलब्धि हमारे ग्रंथों में पहले से मौजूद थी। जो चल रहा है, उसे चलने देना चाहिए। बल्कि और तेज चलाना चाहिए। लेकिन उसके साथ-साथ भारत में एक दूसरी धारा क्यों नहीं शुरू हो सकती? एक ऐसी धारा जिसमें भारतीय ज्ञान-परंपरा के उन प्रश्नों को भी गंभीर शोध का विषय बनाया जाए, जिन्हें आधुनिक साइंस ने अपनी वर्तमान अध्ययन-पद्धति के बाहर रखा है, जैसे चेतना, अनुभूति, मनुष्य और प्रकृति का संबंध, जीवन का अर्थ, आत्मानुभूति, और सृष्टि तथा सृष्टिकर्ता के संबंध जैसे प्रश्न। अगर मन जैसी एब्स्ट्रेक्ट चीज पर एक पूरी मेडिकल साइंस विकसित हो सकती है तो आत्मा पर क्यों नहीं ?

इसका अर्थ यह नहीं कि हर आध्यात्मिक दावे को सत्य मान लिया जाए। बल्कि ठीक उलटा। जो दावा परीक्षण योग्य है, उसका परीक्षण हो; जो मापने योग्य है, उसे मापा जाए; जो प्रयोग से जांचा जा सकता है, उस पर प्रयोग हो; जो सिद्ध हो, उसे स्वीकार किया जाए; जो असिद्ध हो, उसे असिद्ध ही कहा जाए। अर्थात भारतीय ज्ञान-परंपरा को अंधविश्वास के संरक्षण की जरूरत नहीं है। उसे अनुसंधान के अवसर की जरूरत है। और आधुनिक साइंस को भी इससे कोई खतरा नहीं है। यदि कोई भारतीय अवधारणा परीक्षण में गलत सिद्ध होती है, तो वह ज्ञान में जुड़ती नहीं। और यदि कोई अवधारणा परीक्षण में सही सिद्ध होती है, तो वह केवल इसलिए गलत नहीं हो जाती कि उसका स्रोत भारत की किसी प्राचीन परंपरा में था।

साइंस बनाम विज्ञान का वास्तविक अर्थ यही सामने आता है कि, सत्य का पासपोर्ट नहीं होता। हमारा उद्देश्य साइंस के सामने विज्ञान खड़ा करके एक को दूसरे से हराना नहीं है। उद्देश्य यह है कि दो अलग ज्ञान-परंपराओं के बीच एक नया शोध-क्षेत्र बनाया जाए। एक धारा आज की साइंस की अपनी गति से आगे बढ़ती रहे। दूसरी समानांतर धारा भारतीय ज्ञान-परंपरा में उपलब्ध अवधारणाओं, अनुभवों, पद्धतियों और प्रश्नों को आधुनिक परीक्षण, मापन और अनुसंधान-पद्धति के सामने रखे। जहां दोनों धाराएं मिल सकें, वहां उन्हें मिलाया जाए। न भारतीय ज्ञान को साइंस बनने की मजबूरी हो, न साइंस को भारतीय साबित करने की। दोनों अपनी-अपनी पहचान के साथ चलें और जहां सत्य मिले, वहां एक-दूसरे से जुड़ें, एक-दूसरे में समाहित हों। आने वाले समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है। साइंस को भारतीय बनाने की नहीं, और भारतीय ज्ञान को पश्चिमी साइंस की नकल बनाने की भी नहीं; बल्कि भारत और विश्व की ज्ञान-परंपराओं को एक ऐसे नए अनुसंधान-ढांचे में लाने की, जहां दोनों एक-दूसरे से सीख सकें।

आज भारत के सामने केवल यह अवसर नहीं है कि वह दुनिया की मौजूदा वैज्ञानिक दौड़ में आगे निकले। अवसर इससे बड़ा है। भारत एक ऐसी समानांतर ज्ञान-धारा शुरू कर सकता है जिसमें आधुनिक साइंस की कठोर परीक्षण-पद्धति और भारतीय ज्ञान-परंपरा के गहरे प्रश्न पहली बार बराबरी की मेज पर बैठें। विरोध नहीं; वर्चस्व नहीं; अतीत का महिमामंडन नहीं; वर्तमान का निषेध नहीं। एक नई शुरुआत। जहां साइंस प्रकृति को समझने की अपनी यात्रा जारी रखे और विज्ञान उस यात्रा से यह पूछने का साहस करे कि ज्ञान की अंतिम सीमा कहां है, ज्ञाता कौन है, और ज्ञात जगत के पार अभी क्या-क्या जानना बाकी है?

सवाल साइंस बनाम विज्ञान का नहीं है। असली सवाल है, क्या मानव ज्ञान की अगली छलांग इन दोनों के मिलने से पैदा हो सकती है?❑



❑

प्रभु दयाल

यह लेख दर्शाता है कि भारतीय विदेश सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी खुद पर हँस भी सकते हैं। सं.

एक ब्यूरोक्रेट की गाथा

❑

मॉडर्न गवर्नेंस के इकोसिस्टम में, एक सीनियर सिविल सर्वेंट को सफारी सूट पहने देवता जैसा माना जाता है। लगभग चालीस सालों से, उसकी दुनिया उसके फाउंटेन पेन के एक झटके से होने वाली टेक्टोनिक हलचलों से तय होती है। वह सरकारी खुफिया बातों का रखवाला, फाइलों का मूवर और दुनिया का मालिक होता है। और कुछ नहीं तो वह एक चमकदार रोशनी वाले कमरे का मालिक तो होता ही है जिसमें दो एयर कंडीशनर और एग्जीक्यूटिव कुर्सियों पर लपेटे हुए शानदार तौलिये होते हैं।

अपने सेवाकाल में, एक ऊंचे पद पर बैठे ब्यूरोक्रेट के पास ही असलियत की चाबी होती है। उसकी कार ट्रैफिक को ऐसे चीरती है जैसे मूसा ने लाल सागर को चीर दिया था। वह जो भी बुरा मज़ाक सुनाता है, जूनियर अधिकारी ज़ोर-ज़ोर से हंसते हैं। उसके बॉलपॉइंट पेन का एक स्ट्रोक पुल बना सकता है, किसी प्रोजेक्ट को रोक सकता है, या किसी कॉन्ट्रैक्टर का हफ्ता बर्बाद कर सकता है। उसका टेलीफोन लगातार गूंजता रहता है जिस पर लोग मदद, अपॉइंटमेंट और छोटे चमत्कारों की भीख मांगते रहते हैं। उसे सच में यकीन होता है कि उसके खास तरह के रेड टेप के बिना सरकार ठप हो जाएगी।

और फिर, वह साठ साल का हो जाता हैं। महीने के आखिरी दिन एक बहुत बड़ी घटना होती है। रिटायरमेंट। आखिरी काम का दिन। ऑफिस में उसका आखिरी दिन दुख और नकली आंसुओं का एक बड़ा थिएटर होता है। निचले अधिकारी इमोशनल भाषण देते हैं कि इस दूर की सोचने वाले लीडर के बिना उनका विभाग कैसे खत्म हो जाएगा। बड़े-बड़े गुलदस्ते होते हैं। फोटुएं खींची जाती हैं। शाम 5:00 बजे, जादू खत्म हो जाता है। बदलाव तेज़ और बेरहम होता है। ऑफिस की चाबियां सौंप दी जाती हैं। जब वह अभी भी अपने डेस्क के पौधे पैक कर रहा होता हैं, तब ऑफिस की नेमप्लेट खोल ली जाती है। ऑफिशियल कार उन्हें घर छोड़ती है। जैसे ही कार आगे बढ़ती है, एग्जॉस्ट का धुआं एक युग के खत्म होने

का इशारा कर देता है। कार आखिरी बार खाली होकर चली जाती है।

बहुत शांति होती है। अगली सुबह, अलार्म ज़ोर से नहीं बजता। इससे भी ज़रूरी बात, फ़ोन बिल्कुल नहीं बजता। सेल फ़ोन की स्क्रीन डार्क रहती है। सिर्फ़ एक मोबाइल नेटवर्क से टेक्स्ट मैसेज आते हैं जो सस्ता डेटा प्लान दे रहा है। एक ताकतवर सिविल सर्वेंट से रिटायर्ड व्यक्ति बनना इंसानियत के लिए सबसे अचानक होने वाले बायोलॉजिकल और सोशियोलॉजिकल अजूबों में से एक है। यह एक वीआईपी का तुरंत एक मामूली इंसान में बदल जाना होता है। हिज़ एक्सीलेंसी से अरे, आप ड्राइववे ब्लॉक कर रहे हैं में बदल जाना। लोकल बैंक में जाने पर एक शॉक लगता है। गार्ड खड़ा नहीं होता। रिसेप्शनिस्ट उसे टोकन लेकर लाइन में इंतज़ार करने का कहता है।

इसका राज़ जानना आसान है। ताकत उसकी नहीं थी। यह कुर्सी की थी। जब वह कुर्सी पर बैठता था, तो वह ताकतवर होता था। जब वह कुर्सी से उठता था, तो वह बस अपना पढ़ने का चश्मा ढूंढने वाला एक आदमी होता था। रिटायर्ड सिविल सर्वेंट, जैसे ही उनकी आखिरी पेंशन फाइल पर साइन होते हैं, दुनिया के सबसे ताकतवर शासक से ऐसे लोग बन जाते हैं जो दिखाई नहीं देते।

इस दुखद घटना को समझने के लिए, सरकार के दिए हुए ईगो को जानना होगा। दशकों से, सिविल सर्वेंट की सेल्फ-वर्थ उनके लाइटहाउस के साइज़ और उनके चपरासी की स्पीड से जुड़ी रहती है। चपरासी एक स्टेटस सिंबल होता है, जो एक ऐसा समर्पित इंसान होता है जिसकी ज़िंदगी का एकमात्र मकसद फाइलों को दस गज दूर पीए के कमरे तक ले जाना होता है, और जो भी पास आने की हिम्मत करता है, उसे खतरनाक नज़रों से देखता है।

दशकों तक, सिविल सर्वेंट का घर सरकार का ही हिस्सा होता था। विज़िटर बरामदे में लाइन लगाकर खड़े रहते थे, उनके हाथ में अच्छे ट्रांसफर या जल्दी लाइसेंस की उम्मीद में बढ़िया ड्राई फ्रूट्स के डिब्बे होते थे। रिटायरमेंट के बाद, बरामदा खाली हो जाता है। ड्राई फ्रूट्स सूख जाते हैं। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी बात यह है कि ब्यूरोक्रेट अब हमेशा के लिए घर पर है।

रिटायरमेंट के पहले दिन, फाइल ले जाने वाला गायब हो जाता है। रिटायर्ड ऑफिसर लोकल मार्केट जाने के लिए अपने घर से निकलता है, आदत से मजबूर होकर मुड़ता है, और महसूस करता है कि उसके पीछे एक आवारा कुत्ते के अलावा कोई नहीं है। उसे यह भयानक एहसास होता है कि अब उसे अपने प्याज खुद ले जाने होंगे। जो हाथ कभी मल्टी-मिलियन-डॉलर के इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट्स पर साइन करते थे, वे अब एक नीला प्लास्टिक बैग पकड़कर, सब्जी की कीमतों में बेवजह बढ़ोतरी पर एक वेंडर से मोलभाव करने को मजबूर हैं।

घर वापस आकर, एडमिनिस्ट्रेशन के पुराने बड़े आदमी को एक कड़वी सच्चाई का सामना करना पड़ता है। पत्नी उसे किचन में खड़ा देखती है और उसे एक शॉपिंग बैग थमा देती है। उसे अब एक नया पोर्टफोलियो दिया गया है। ग्रॉसरी प्रोक्योरमेंट और गारबेज डिस्पोजल मिनिस्टर। जो आदमी कभी हज़ार जूनियर अधिकारियों को कमांड करता था, वह अब प्याज खरीदने और दूध का पैकेट में दूध फट तो नहीं गया है, यह चेक करने के लिए सीधे ऑर्डर लेता है।

दशकों तक, सिविल सर्वेंट का घर सरकार का ही हिस्सा होता था। विज़िटर बरामदे में लाइन लगाकर खड़े रहते थे, उनके हाथ में अच्छे ट्रांसफर या जल्दी लाइसेंस की उम्मीद में बढ़िया ड्राई फ्रूट्स के डिब्बे होते थे। रिटायरमेंट के बाद, बरामदा खाली हो जाता है। ड्राई फ्रूट्स सूख जाते हैं। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी बात यह है कि ब्यूरोक्रेट अब हमेशा के लिए घर पर है। यह घर के लिए एक बहुत बड़ी मुसीबत है। एक आदमी जिसने पैंतीस साल डिपार्टमेंट्स को कमांड किया, अब किचन में ब्यूरोक्रेटिक प्रिंसिपल्स लागू करने की कोशिश करता है। वह लॉन्ड्री के लिए एक फाइल ट्रैकिंग सिस्टम लाने की कोशिश करता है। वह लिविंग रूम के पर्दे बदलने से पहले एक डिटेल प्रोजेक्ट रिपोर्ट मांगता है। वह मेड की छुट्टी की एप्लीकेशन को वेट करने की कोशिश करता है, बस उसे बताया जाता है कि अगर उसे सर्विस पसंद नहीं है, तो वह खुद बर्तन धो सकता है। अपनी कॉन्स्टिट्यूशनल इम्यूनिटी से छीने जाने के बाद, एडमिनिस्ट्रेटिव दायरे का पुराना शासक जल्दी ही असली अथॉरिटी: अपनी पत्नी: के आगे झुकना सीख जाता है।

शायद सबसे बुरा झटका वही ब्यूरोक्रेसी उसे देती है जिसे वह पीछे छोड़ आया है। एक रेगुलर पेंशन सर्टिफिकेट की ज़रूरत पर एक रिटायर्ड ऑफिसर अपने पुराने डिपार्टमेंट गया। वह एक भूत की तरह कॉन्फिडेंट कदमों से अंदर गया, जो अपनी जानी-पहचानी जगहों पर लौट रहा था। उसे उम्मीद थी कि लोग इज्ज़त की फुसफुसाहट सुनेंगे। इसके बजाय, उसकी मुलाकात एक पच्चीस साल की कॉन्ट्रैक्ट पर काम करने वाली क्लर्क से हुई जो अपने स्मार्टफोन स्क्रीन से नज़रें नहीं हटा रही थी।

नाम? उसने पूछा।

मैं डॉ. फलां हूँ, उसने सीना फुलाते हुए कहा। मैं इसी डिपार्टमेंट का प्रिंसिपल सेक्रेटरी था।

बेमतलब, उसने गम चबाते हुए सोचा। फॉर्म 16-इ गायब है। कृपया काउंटर 4 पर लाइन में लगें।

जिस सिस्टम को बनाने में उसने पूरी ज़िंदगी लगा दी थीकभी न खत्म होने वाली रेड टेप, काम जल्दी करने से ज़िद करना, सरकार की ठंडी, बेरहम मशीनरीवही पलटकर उसे पूरा निगल जाती है। आखिरकार वह अपने

वास्तव में भारतीय सिविल सर्वेंट कभी रिटायर नहीं होता क्योंकि सिस्टम उसे जाने नहीं देगा, और वह सिस्टम को जाने नहीं देगा। वह कभी न खत्म होने वाले पेपरवर्क और प्रोटोकॉल के एक सुंदर, सिंबायोटिक लूप में फंसा रहता है।

किसी भी रिटायर्ड ब्यूरोक्रेट का ड्राइंग रूम आधी-अधूरी मैन्युस्क्रिप्ट के बिना पूरा नहीं होता, जिसका टाइटल शायद 'इनसाइड द कॉरिडोर्स ऑफ़ पावर' या 'माई ट्रिस्ट विद पॉलिसी' हो। इन किताबों का नैरेटिव एक जैसा होता है। पिछले तीन दशकों के हर बड़े इकोनॉमिक रिफॉर्म, जियोपॉलिटिकल जीत, या एडमिनिस्ट्रेटिव ब्रेकथ्रू के बारे में पता चलता है कि लेखक ने चुपके से ऑर्गेनाइज़ किया था।

पहले के कर्मचारियों की नज़र में आम आदमी के बराबर हो जाता है, यानी अब वह पूरी तरह से गायब हो जाता है। फिर आती है इंटेलेक्चुअल अवेयरनेस, याने द मैंडेटरी मेमॉयर। किसी भी रिटायर्ड ब्यूरोक्रेट का ड्राइंग रूम आधी-अधूरी मैन्युस्क्रिप्ट के बिना पूरा नहीं होता, जिसका टाइटल शायद 'इनसाइड द कॉरिडोर्स ऑफ़ पावर' या 'माई ट्रिस्ट विद पॉलिसी' हो। इन किताबों का नैरेटिव एक जैसा होता है। पिछले तीन दशकों के हर बड़े इकोनॉमिक रिफॉर्म, जियोपॉलिटिकल जीत, या एडमिनिस्ट्रेटिव ब्रेकथ्रू के बारे में पता चलता है कि लेखक ने चुपके से ऑर्गेनाइज़ किया था, आमतौर पर बारिश वाले मंगलवार को देर तक काम करते हुए। इसके उलट, हर पॉलिसी डिज़ास्टर पॉलिटिकल मजबूरियों या किसी जूनियर ऑफिसर की गलती थी जो किसी भूली हुई फ़ाइल के पेज 42 पर लेखक के शानदार, दूरदर्शी फुटनोट को पढ़ने में फेल रहा। मेमॉयर लिखना टाइम पास करने का एक शानदार तरीका है, क्योंकि इसके लिए घंटों पुरानी डायरियों को देखना और डिनर पार्टियों में ऐसे खुलासों के बारे में हिंट देना पड़ता है जो एस्टैब्लिशमेंट को हिला देंगे। लॉ एंड गवर्नमेंट

सर्विस नियमों की वजह से पूरी ज़िंदगी मीडिया में सीधे कोटेशन से बचने के बाद, रिटायर्ड ऑफिसर पब्लिक स्टेज पर आ जाता है। वह शाम के न्यूज़ चैनलों पर स्ट्रेटेजिक अफेयर्स एक्सपर्ट बन जाता है, डिफेंस प्रोक्योरमेंट या फॉरेन पॉलिसी के मुद्दों पर पांच दूसरे लोगों पर चिल्लाते हुए बहुत परेशान दिखता है। व्हाट्सएप्प पर, वह साथी रिटायर्ड लोगों के एक्सक्लूसिव ग्रुप बनाता है जहां वे नेशनल सिक्योरिटी पर बहुत ज़्यादा फॉरवर्ड किए गए निबंध साझा करते हैं, सिविल सर्विसेज़ के पतन पर दुख जताते हैं, और सुबह छह बजे संस्कृत के एक मूल शब्द की स्पेलिंग पर ज़ोरदार बहस करते हैं।

वास्तव में भारतीय सिविल सर्वेंट कभी रिटायर नहीं होता क्योंकि सिस्टम उसे जाने नहीं देगा, और वह सिस्टम को जाने नहीं देगा। वह कभी न खत्म होने वाले पेपरवर्क और प्रोटोकॉल के एक सुंदर, सिंबायोटिक लूप में फंसा रहता है। एक बूढ़ा ब्यूरोक्रेट शायद मौत को अंत के तौर पर नहीं, बल्कि सिर्फ़ एक ऊंचे अधिकारी के पास एक परमानेंट डेप्युटेशन के तौर पर देखता है - एक ऐसी पोस्ट जिसके साथ उम्मीद है कि अच्छी पेंशन, एक पर्सनल असिस्टेंट, और बादलों में एक कोने का ऑफिस मिलेगा।❑

शिक्षा के विषय पर केंद्र व राज्यों के अलग नज़रिये



❑

एल्डो मैथ्यूज

केरल राज्य उच्च शिक्षा परिषद से सम्बद्ध लेखक भारतीय संघ की संवैधानिक अवधारणा में उच्च शिक्षा की बदलती गतिशीलता का विश्लेषण कर रहे हैं। सं.

❑

रेगुलेटरी अथॉरिटी, पाठ्यक्रम, भाषा नीति, सार्वजनिक फंडिंग और डिजिटल गवर्नेंस से जुड़े मुद्दों ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र को एक ऐसे महत्वपूर्ण स्थल में बदल दिया है, जहां केंद्र और राज्य सरकारों के अलग-अलग दृष्टिकोण आपस में टकराते हैं। ये घटनाक्रम न केवल उच्च शिक्षा की दिशा तय करते हैं, बल्कि यह भारत के विकसित होते संघीय ढांचे का एक अभिन्न अंग बन गये हैं।

हाल के कुछ उदाहरणों में अलग-अलग राज्यों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को लागू करने को लेकर हुए विवाद शामिल हैं। भारत में विदेशी यूनिवर्सिटी कैंपस खोलने में मदद करने वाले हालिया रेगुलेटरी सुधारों पर भी राज्य सरकारों की अलग-अलग प्रतिक्रियाएं आई हैं, जो उनके अलग-अलग नज़रिए को दिखाती हैं। इस बंटे हुए राजनीतिक माहौल का देश में उच्च शिक्षा के प्रबंधन पर अहम असर पड़ता है। हालांकि, इन पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।



कई घटनाओं से ये तनाव साफ़ तौर पर दिखे हैं। तमिलनाडु में, राज्य सरकार ने बार-बार नई शिक्षा नीति 2020 के अलग-अलग पहलुओं का विरोध किया है, खासकर तीन भाषाओं वाले फ़ॉर्मूले पर। इस सरकार ने इस साल तीसरी भाषा पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के परिपत्र का भी



विरोध किया है। तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में वाइस-चांसलरों की नियुक्ति और राज्यपालों की शक्तियों को लेकर हुए विवादों में भी केंद्र और राज्य के बीच तनाव साफ़ दिखा है।

हालांकि शिक्षा संवैधानिक रूप से संविधान की 'समवर्ती सूची' में शामिल है, जिससे केंद्र और राज्यों दोनों को कानून बनाने का अधिकार मिलता है, लेकिन मौजूदा व्यवस्था में केंद्र का पलड़ा भारी रहता है। शिक्षा मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और विभिन्न नियामक और एक्रेडिटेशन संस्थाओं के ज़रिए केंद्र सरकार का देश भर के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों पर काफी नियंत्रण रहता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को लागू करना भारत में उच्च शिक्षा के ढांचे को फिर से तैयार करने की एक अहम कोशिश है। इस नीति में बड़े सुधारों का प्रस्ताव है, जैसे चार साल के अंडरग्रेजुएट प्रोग्राम, एकेडमिक बैंक ऑफ़ क्रेडिट्स, संस्थागत पुनर्गठन, मल्टी-डिसिप्लिनरी यूनिवर्सिटीज़ और अंतर्राष्ट्रीयकरण की पहल।

ये सुधार उन क्षेत्रों में भी केंद्र के प्रभाव को बढ़ाते हैं जो ऐतिहासिक रूप से राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में रहे हैं। इसके अलावा, अब केंद्रीय फंडिंग मिलना राष्ट्रीय स्तर पर तय किए गए सुधार एजेंडा के पालन पर ज़्यादा निर्भर करता है। 'इंस्टीट्यूशंस ऑफ़ एमिनेंस' पहल और 'अनुसंधान नेशनल रिसर्च फाउंडेशन' के तहत प्रतिस्पर्धी रिसर्च मैकेनिज़्म जैसे प्रोग्रामों ने राज्यों के अधिकार पर केंद्र सरकार के प्रभाव को बढ़ाया है। राष्ट्रीय रेगुलेटरी एजेंसियों की भूमिका भी टकराव का एक और अहम मुद्दा बन गई है।

'विकसित भारत शिक्षा अधिष्ठान बिल, 2025' में प्रस्तावित ढांचे, जिनका मकसद यूजीसी सहित मौजूदा उच्च शिक्षा रेगुलेटरी संस्थाओं की जगह लेना है, ने राज्य सरकारों के अधिकार के धीरे-धीरे कम होने को लेकर चिंताएं पैदा की हैं।

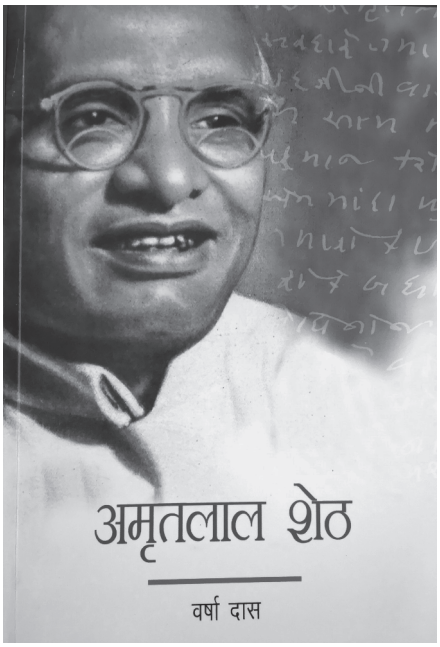
केंद्रीकरण का एक और अहम पहलू डिजिटल गवर्नेंस है। 'एकेडमिक बैंक ऑफ़ क्रेडिट्स' जैसे मैकेनिज़्म ने राज्यों में उच्च शिक्षा गवर्नेंस को स्टैंडर्डाइज़ करने और उसकी निगरानी करने की केंद्र सरकार की क्षमता को बढ़ाया है। मज़बूत क्षेत्रीय राजनीतिक पहचान वाले राज्यों में, इन सुधारों को सिर्फ़ प्रशासनिक मुद्दों के तौर पर नहीं, बल्कि भारतीय संघ के भीतर सत्ता के संतुलन से जुड़े संवैधानिक सवालों के तौर पर देखा जाता है।

दिलचस्प बात यह है कि नई शिक्षा नीति 2020 के लागू होने से यह भी पता चला है कि उच्च शिक्षा में केंद्र-राज्य संबंध पूरी तरह से टकराव वाले नहीं हैं। पूरी तरह से स्वीकार करने या पूरी तरह से खारिज करने के बजाय, कई राज्यों ने- जिनमें विपक्ष शासित राज्य भी शामिल हैं- स्थानीय राजनीतिक हालात के हिसाब से सुधारों के कुछ पहलुओं को चुना और अपनाया भी है। यह रणनीतिक अनुकूलन पर आधारित संघीय ढांचे के एक ज़्यादा बातचीत-आधारित रूप के उभरने को दिखाता है। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीयकरण के मामले में, कई राज्य विदेशी संस्थाओं के साथ साझेदारी को बढ़ावा देकर खुद को क्षेत्रीय शिक्षा हब के तौर पर स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। ये घटनाक्रम बताते हैं कि वैश्विक पहचान और ज्ञान-आधारित विकास के लिए उच्च शिक्षा को एक रणनीतिक साधन के तौर पर तेज़ी से पहचाना जा रहा है। अंतरराष्ट्रीय ब्रांच कैंपस खोलने को लेकर हो रही बहस भी इस बदलाव को दिखाती है। हालांकि नियम-कानून और पॉलिसी की दिशा मुख्य रूप से केंद्र सरकार तय करती है, लेकिन ऐसी पहलों को असल में लागू करना काफी हद तक राज्य सरकारों पर निर्भर करता है जैसे स्थानीय प्रशासनिक मंज़ूरी, बुनियादी ढांचे में मदद और निवेश को आसान बनाना।

जैसे-जैसे भारत का क्षेत्रीय राजनीतिक माहौल बदल रहा है, उच्च शिक्षा के कामकाज का तरीका न सिर्फ़ संवैधानिक प्रावधानों या राष्ट्रीय स्तर की पॉलिसी पर निर्भर करेगा, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करेगा कि केंद्र और राज्य संघीय ढांचे के भीतर अलग-अलग राजनीतिक और विकास संबंधी प्राथमिकताओं के बीच कैसे तालमेल बिठाते हैं। ❑

प्रखर सत्याग्रही का जीवन चरित्र

❑



अमृतलाल शेठ गुजरात के एक प्रखर पत्रकार एवं गांधीभक्त सत्याग्रही थे। वे 'सौराष्ट्र के सिंह' के रूप में लोक में विख्यात थे। उन्होंने रियासती काल में प्रजा पर होने वाले अत्याचारों को बहुत करीब से देखा था। पेशे से वे वकील थे, किन्तु पीड़ित और मूक जन को आवाज देने के लिये उन्होंने 1921 में 'सौराष्ट्र' नाम का एक साप्ताहिक अखबार शुरू किया। धोलेरा के नामक सत्याग्रह का नेतृत्व किया। उनका काफी समय जेलों में बीता। फिर 1934 में मुंबई में 'जन्मभूमि' दैनिक अखबार निकाला। अपनी जां को जोखिम में डाल कर सुभाषचंद्र बॉस की गतिविधियों के दस्तावेज़ बर्मा और सियाम से भारत लाए। इससे भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण अध्यार जुड़ा।

वर्ष 1954 की 30 जुलाई को अपनी नश्वर देह त्यागने से पहले अमृतलाल शेठ ने अपने जीवन और समय के बारे में अखबारों में खून लिखा। दुर्भाग्य से वह सारा सावधानी से संभाल के नहीं रखा जा सका। लेकिन नेशनल बुक ट्रस्ट में तीन दशकों तक तथा राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय में निदेशक के पद पर कार्यरत रहीं वर्षादास ने श्रमपूर्वक अमृतलाल शेठ का जीवन चरित्र लिख कर नई पीढ़ी पर उपकार किया है जिनकी स्मृतियों में शेठ अन्यथा विस्मृत रह जाते।

लाभूबहन मेहता की पुस्तकएं, मानुभाई मेहता द्वारा संपादित पुस्तक, राजुलभाई दवे और जयबहन शाह की पुस्तकें तथा कांतिलाल शाह की पुस्तक 'धोलेरा सत्याग्रह' से शेठ के जीवन कि अमूल्य जानकारी एकत्र कर लेखिका ने उनका जीवन चरित्र लिखा है।

वर्षा जी ने अपने नाना पर यह पुस्तक मूल रूप से गुजराती में लिखी थी। अब उन होंने उसका हिन्दी अनुवाद किया है जिसे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने प्रकाशिक किया है जिससे अमृतलाल शेष के बारे में गुजरात से बाहर भी पाठक जान सकेंगे।

बिना किसी अतिरंजना के लिखी इस पुस्तक से हम जान पाते हैं कि किस प्रकार एक जज़्बाती युवक तत्कालीन रियासतों के वकील का जमा-जमाया काम छोड़ कर गांधी की सलाह लेने पहुंच गया। गांधी ने उसे सौराष्ट्र में काम करने की राय दी।

गांधी के सत्याग्रहों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने के लिये उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा। 'हिन्द छोड़ो' आंदोलन के समय उन्होंने भूमिगत गतिविधियों में हिस्सा लिया। मुंबई में हुए सांप्रदायिक दंगों में वे एक सिंह की तरह निर्भयता से उनके बीच जाकर काम किया।

रियासती जुल्मों से मुक्ति के लिये उन्होंने 'कठियावाड़ राजकीय परिषद' और 'अखिल हिन्द राजस्थान परिषद' की स्थापना की। पत्रकार के रूप में उन्होंने 'इंडियन लेंग्वेजीस न्यूजपेपर एसोसिएशन' की नींव डाली और आठ वर्षों तक उसकी अध्यक्षता भी की।

वर्षा जी ने शेठ का जीवन चरित्र बडे मनोयोग से लिखा और अनूदित किया है। शेठ के घटनाप्रधान जीवन को जिस प्रकार कागज पर उतारा गया है वह पाठक को हर पृष्ठ पर बांधे रखता है। जैसे गांधी और जिन्ना के बीच 1944 में चली मंत्रणा के दौरान दोनों के बीच हुए पत्राचार का शेठ के समाचार पत्र 'जन्मभूमि' में छपना।

स्वाभाविक ही है कि वह गांधी या जिन्ना में से किसी एक के यहां से अखबार में पहुंचा। बापू ने किसी से कहलवाया कि अमृतलाल जिन्ना के दफ्तर से चोरी क्यों करवाएंगे? यह तो उन्होंने गांधी के यहां से ही निकाला होगा। इसके लिये अमृतलाल को सार्वजनिक रूप से गुनाह कबूल करके जाहिर में माफी माँगनी होगी। गांधीजी के इस संदेश से अमृतलाल को बहुत गुस्सा आया और उन्होंने अपना उत्तर भेजा मैं अखबार निकालता हूं, गांधी आश्रम नहीं चला रहा। हकीकत यह थी कि अमृतलाल को जिन्ना के दफ्तर से ही खबरें मिलती थीं। **–रा.बो.** ❑

''बची हुई रोशनी में''

❑



डॉ. उमाकांत गुप्त

अपनी कविताओं के जरिये कवि गिरिराज मोहता समकालीन मानवीय चुनौतियों से बाथेड़ा लेते हैं और अन्धेरों से लड़ते; टकराते हैं। उनकी यह कोशिश उनकी कृति ''बची हुई रोशनी में'' सामने आती है। उनका यह काव्य संग्रह भले ही पहला हो, पर सोच की परिपक्वता और रचाव की नवलता के संगम से पाठक को सराबोर करता है।

गिरिराज बनी बनायी प्रविधि के विरूद्ध तयशुदा पद्धति नहीं अपनाते वरन् नये विनम्र मुहावरे के साथ शब्दों के अर्थ के पार निकलते हैं। बाहर से वैयक्तिक दिखाई देते हुए भी कवि न केवल आत्म तत्व को पहचानने की कोशिश करता है, बल्कि भीतरी द्वन्द्व की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करते हुए सुखद संसार की कामना भी करता है।

संग्रह की कविताएं देहात्मक नहीं आत्मिक यात्रा हैं, सांस्कृतिक कर्म है जो गिरिराज की काल के पार जाने की सलाहियत को शब्द-दर-शब्द रेखांकित करती है। वे स्वयं कहते हैं कि ''उनकी कविताएं भीतर के भूगोल से जायी जन्मी हैं, यहां प्रेम है लेकिन वह केवल उत्सव नहीं है, यहां दुःख है लेकिन केवल वह विलाप नहीं है। यहां मौन है लेकिन वह रिक्त नहीं है। वह अपने भीतर मनुष्य को सबसे गहरी आवाजें छिपाएं हुए है। मुझे हमेशा लगता रहा है कि मनुष्य का सबसे बड़ा संकट अव्यक्त होना नहीं है बल्कि उन आयामों से दूर होना है जिनसे वह व्यक्त हो सकता है।'' कवि का यह कथन उसके रचाव का प्रस्थान बिन्दु है।

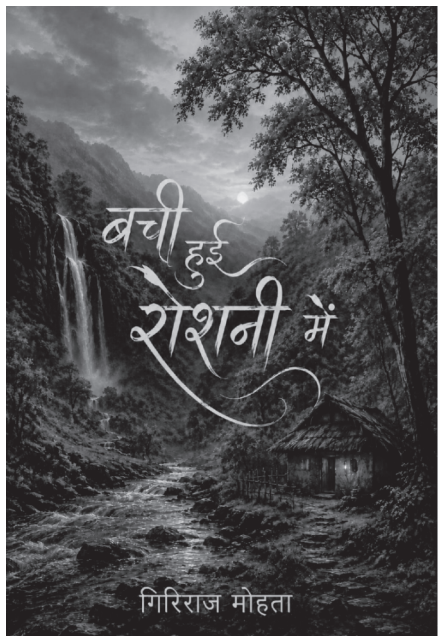
तनाव, उद्विग्नता एवं संशय के वृत्त से निकलकर कवि बची हुई सम्भावनाओं में रोशनी की तलाश करता है। वह सार्थकता, सकारात्मकता को बचाने की चाहत में रचता जाता है। उनकी कविताएं रिश्तों की धुन्ध में, समय के चेहरे पर लिखी बैचेनियां मौन के मार्ग से होती हुई ''बची हुई रोशनी में''जिन्दगी को अवेरती हैं। संकलन की कविताएं दार्शनिक गूढोक्तियां नहीं गढ़ती। एक बानगी: ''कई सच इसलिए भी गैर वाजिब हैं/कि तब बोले गए जब ज़रूरत नहीं थी/झूठ, झूठ ही था पर सराहा गया/सच कहने की भी तो सबकी तासीर नहीं थी।''

गिरिराज फासलों के बीच खड़ी अस्मिता की दृढ़ता से एक वकील की मानिंद पैरवी करते हुए कहते हैं: ''बड़ा अजब फ़ासला, दरमियां था/ दूर हो गया मैं, ख़ुद के करीब आकर।'' कवि अहसासों की रोशनी संजोना चाहता हैं: ''रिश्तों के घरों में, अहसासों का मुकाम रखना/ प्यार की नर्म धूप आ सके, ऐसा रोशनदान रखना।'' इन कविताओं में संवेगों के कई रूप व छवियां दिखाई देती है जो रचनाकार की ताकत है। मिथकों का नए अन्दाज के साथ प्रयोग करना गिरिराज का वैशिष्ट्य है: ''मथा गया था बहुत पहले कभी समन्दर/ आबो हवाओं से अब तलक न जहर गया। बात कुछ पल की थी मगर कही न गयी/ लम्हा-दर लम्हा खामोश यह पहर भी गया।''

वे जीवन को समझने के लिए कविता लिखते है। उनका लेखन प्रचारात्मकता अथवा प्रतिक्रियात्मकता मात्र नहीं हैं। वे नकारात्मकता की भूमि से सकारात्मक, मूल्यक्षम रचाव करते हैं: ''क्यों तसल्लियों के धागे बुनते हो/ यह जिन्दगी है कोई जाल नहीं है। चुप रहना भी है बगावत में शामिल/ ऐसे लहजे की, फिर कोई मिसाल नहीं।''

गिरिराज की कविता में नारे नहीं, साफगोई है: ''फर्क लहजे का था, हम दोनो के दरमियां/ मैं मुस्करा कर मिला, तुम मिल कर मुस्कुराए।''

जीवन के स्पन्दनों को कवि रोशनी की मानिंद संजोना चाहता है। कविताएं नये बदले तेवर की सूचक भी है। सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए प्रकाशक सोशल प्रोगेसिव सोसाइटी, बीकानेर साधुवाद की पात्र है।❑



संस्कृतियों में साधना और साधक



राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में ग्रासरूट मीडिया फाउंडेशन के सहयोग से मनाए गए 'पाठक पर्व' में 21 सितंबर को जापान की डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माता साकुराको आबे से चर्चा रही जो भारत और जापान के हजारों वर्ष पुराने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संबंधों की गहराई की की खोज में लगी हैं। साकुराको आबे ने भारत को जानने के लिये हिन्दी सीखी। वे वर्ष 1992 में शांतिनिकेतन में भी रहीं।

आबे का कहना था कि बदले हुए आधुनिक युग में अब भी दोनों प्राचीन संस्कृतियों में साधना और साधक की अन्तर्धारा विद्यमान है। उनका कहना था भारत और जापान दोनों की संस्कृतियों में सनातन रूप से माना जाता रहा है कि साधक वह, जो साधना में लगा रहे, प्रक्रिया का आनंद ले, परिणाम का न सोचे।

जापान की राष्ट्रीय प्रसारक संस्था छक्घ के लिए 20 वर्षों तक डॉक्यूमेंट्री फिल्मों की शृंखलाओं के लिए काम करने के बाद अब स्वयं अपनी फिल्में बनाने के साथ पुस्तक प्रकाशन तथा भारतीय दस्तकलाओं पर काम में लगी आबे की फिल्में भी दोनों देशों की संस्कृतियों की इसी अन्तर्धारा की खोज करती नज़र आती हैं। इसकी कुछ झलकियां उन्होंने अपनी एक फिल्म के कुछ अंश स्क्रीन पर प्रदर्शित कर दिखाई, जिसे कोलकाता अन्तराष्ट्रीय फिल्म समारोह में क्रिटिक पुरस्कार मिला था।

इस अवसर पर राधेश्याम कथावाचक की पारसी नाट्य शैली में लिखी 'राधेश्याम रामायण' पर राजेन्द्र बोड़ा ने चर्चा की। राधेश्याम रामायण पर ही गांव-गांव में रामलीलाएं खेली जाती है। कार्यक्रम का संचालन ग्रासरूट मीडिया फाउंडेशन के प्रमोद शर्मा ने किया तथा विदेशी अतिथि को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सचिव हिमांशु व्यास ने अपनी 'हाइकु' कविताओं की किताब 'अरे' तथा पूर्व कुशवाहा द्वारा किए गए जापानी उपन्यास 'तोतो चान' के हिंदी अनुवाद की किताब भेंट की। यह अनुवाद सबसे पहले समिति के मुखपत्र अनौपचारिका में शृंखलाबद्ध छपे थे।❑

बटीना जी सेवानिवृत्त

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति की कार्यक्रम अधिकारी श्रीमती बटीना मलिक गत माह सेवानिवृत्त हो गईं।

समिति में एक आत्मीय आयोजन में उन्हें स्वस्थ और सुखी जीवन की कामनाओं के साथ विदाई दी गई और आशा की गईं की वे इस स्वयंसेवी समिति के कामों में अपना योगदान निरंतर देती रहेंगी।

इस अवसर पर उन्हें समिति के पदाधिकारियों तथा सहयोगियों ने उपहार दिये तथा उनके लोक शिक्षण के कामों को याद किया। समारोह में बटीना जी के पति ध्रुव यादव, जो समिति की कार्यकारिणी के सदस्य हैं, तथा उनके परिजनों समेत समिति के सेवानिवृत्त साथी भी मौजूद थे।❑







बीकानेर में मोहता के काव्यसंग्रह का लोकार्पण

पद्मश्री शायर शीन क़ाफ निज़ाम ने बीकानेर में एडवोकेट गिरिराज मोहता के सद्यप्रकाशित काव्य संग्रह 'बची हुई रोशनी में' का लोकार्पण किया। यह आयोजन पिछले दिनों प्रज्ञा परिवृत्त, सोशल प्रोग्रेसिव सोसाइटी, और परम्परा बीकानेर की ओर प्रौढ़ शिक्षा भवन सभागार में हुआ।

समारोह की अध्यक्षता साहित्यकार मधु आचार्य ने की और कवि गिरिराज मोहता ने इस अवसर पर अपने इस संग्रह से चुनिंदा कविताएं पढ़ी। कार्यक्रम का संयोजन प्रो. ब्रजरतन जोशी किया जबकि कार्यक्रम का स्वागत उद्बोधन नदीम अहमद 'नदीम' ने दिया और सुख्यात प्रकाशक दीपचंद सांखला ने आयोजक संस्थाओं की ओर से आगंतुक अतिथियों का आभार व्यक्त किया।

कार्यक्रम में जाने-माने कवि डॉ. नंदकिशोर आचार्य, वरिष्ठ अधिवक्ता दाउलाल पुरोहित, एस.एल.हर्ष, डॉ.उमाकांत गुप्त सहित नगर के अनेक गणमान्य नागरिक उपस्थित थे।❑



मेजर जनरल जयदेवसिंह स्मृति विचारपीठ

समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार संवर्द्धन के लिए समर्पित बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति ने शिक्षक दिवस पर प्रौढ़ शिक्षा भवन सभागार में मेजर जनरल जयदेवसिंह स्मृति विचारपीठ का आयोजन किया जिसमें 'युवा और देश का भविष्य विषय पर संवाद रखा गया। समिति इस विचारपीठ का आयोजन 1983 से नियमित कर रही है।

इस अवसर पर संस्था परिवार के चुनिंदा प्रशिक्षकों एवं व्यक्तित्वों को मेजर जनरल जयदेवसिंह भार्गव सम्मान, 2026 भी दिया गया।

मुख्यवक्ता एवं मुख्यअतिथि एडवोकेट शंकरलाल हर्ष थे और अध्यक्षीय उद्बोधन में पूर्व जिला एवं सत्र न्यायाधीश गिरधरलाल आचार्य ने दिया।

बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति की सचिव श्रीमती सुशीला ओझा ने विचारपीठ के उद्देश्यों की जानकारी दी।❑





नारीवादी ग्लोरिया स्टीनम नहीं रही

अमेरिकी पत्रकार और नारी को समर्थ बनाने वाले सामाजिक आंदोलन की नेता के तौर पर उभरी ग्लोरिया स्टाइनम का गत 2 सितंबर को न्यूयॉर्क शहर के मैनहट्टन में 92 वर्ष की आयु में निधन हो गया।

फेमिनिस्ट आइकॉन के रूप में मशहूर होने से बहुत पहले, ग्लोरिया स्टाइनम ने भारत में दो साल बिताए, और महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित होकर लौटी जिसने उनके भावी जीवन को राह मिली।

स्मिथ कॉलेज की 22 वर्षीय ग्रेजुएट स्टाइनम 1950 के दशक के उत्तरार्ध में चेस्टर बोल्स एशियन फेलो के रूप में भारत आई थीं। दिल्ली के मिरांडा हाउस में, स्टाइनम सिर्फ़ दो पश्चिमी लोगों में से एक थीं। भारत में बिताए दो सालों से उनके भावी जीवन की घटनापूर्ण शुरुआत हुई, जिसमें उनके कई आइडिया बनने लगे। बाद में वह एक राइटर, मैगज़ीन एडिटर और अमेरिका में फेमिनिज़्म का सबसे जाना-माना चेहरा बनीं।

वे जातिगत हिंसा पर जवाब देने वाले एक गांधीवादी डायरेक्ट-एक्शन ग्रुप के हिस्से के तौर पर सिर्फ़ एक साड़ी, एक कप और एक कंघी के साथ तमिलनाडु के गांवों में घूमी। बाद में उन्होंने लिखा कि यहीं पर उन्हें गांधी को समर्पित एक सत्तर साल के टीम लीडर से रेडिकल सलाह मिली, जिसने एक्टिविज़्म को देखने का उनका नज़रिया बदल दिया।

अपनी किताब 'माई लाइफ़ ऑन द रोड' में उन्होंने लिखा। अगर आप चाहते हैं कि लोग आपकी बात सुनें, तो आपको उनकी बात सुननी होगी। अगर आप उम्मीद करते हैं कि लोग अपने जीने का तरीका बदलेंगे, तो आपको यह जानना होगा कि वे कैसे जीते हैं। अगर आप चाहते हैं कि लोग आपको देखें, तो आपको उनके साथ आमने-सामने बैठना होगा। हममें से ज़्यादातर लोगों की ज़िंदगी में कुछ ऐसी घटनाएँ होती हैं जो हमारी ज़िंदगी को 'पहले' और 'बाद' में बाँट देती हैं। यह मेरे लिए एक ऐसी ही घटना थी। उन्होंने लिखा, वहां लोगों ने मुझे साड़ी पहनना सिखाया और आमतौर पर भारत के बारे में उस करिकुलम से ज़्यादा सिखाया जो इंग्लिश सिस्टम से बना था।हालाँकि उन्हें अक्सर उदार नारीवादी माना जाता है, मगर स्टाइनम ने बार-बार खुद को कट्टरपंथी नारीवादी ही कहा।

स्टाइनम (25 मार्च, 1934 – 2 सितंबर, 2026) के निधन पर 'द न्यूयॉर्क टाइम्स' ने उन्हें महिला आंदोलन का साक्षात प्रतीक और एक नारीवादी योद्धा बताया। 'द वॉल स्ट्रीट जर्नल' ने उन्हें महिला आंदोलन का एक दीर्घकालिक प्रतीक और एक नारीवादी आइकन कहा। बीबीसी न्यूज़ ने कहा कि स्टाइनम संयुक्त राज्य अमेरिका में महिला मुक्ति आंदोलन की नेता थीं। सीएनएन ने कहा कि स्टाइनम 1960 और 1970 के दशक के नारीवाद की द्वितीय-लहर आंदोलन का चेहरा थीं। एसोसिएटेड प्रेस ने स्टाइनम को अमेरिकी महिला आंदोलन के सबसे प्रमुख प्रतीकों और सशक्त आवाजों में से एक बताया। 'द अटलांटिक' ने कहा कि उन्होंने इस विश्वास के लिए संघर्ष किया कि महिलाएं मिलकर दुनिया बदल सकती हैं।❑



प्रकृति प्रेमियों का समिति में मिलन

पौधा कैसे उगाया जाए, उसे कैसे संभाल कर बड़ा किया जाए और उसकी कैसे संभाल की जाए इनके गुर 23 अगस्त को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में वनस्पति प्रेमियों ने साझा किये। इन प्रकृति प्रेमियों की भागीदारी में समिति प्रांगण में अगस्त माह में शानदार वनस्पति उत्सव का आयोजन किया था।



वे 'ग्रीन हार्मोनी' समूह के फिर एकत्र हुए, पौधों के बारे में दुनिया जहान की बातें की और पौधों की इन महीनों में कैसे संभाल की जाए इसके टिप्स साझा किये।

आयोजन के सूत्रधार समिति के सदस्य देवेन्द्र भारद्वाज सबके लिये पौधों का उपहार लेकर आए थे। वरिष्ठ प्रकृति प्रेमी बसंत किशोर परीक को भेंट देने के लिये अन्य लोग भी पौधे लेकर आए थे। बोन्साई बनाने वाले कुलभूषण शर्मा, घर में जंगल लगा देने वाले राजेन्द्र सिंह के अलावा अन्य ने भी अपने अनुभव साझा किये।❑

RS-CIT
एक परिपूर्ण कंप्यूटर कोर्स !

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट
राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज

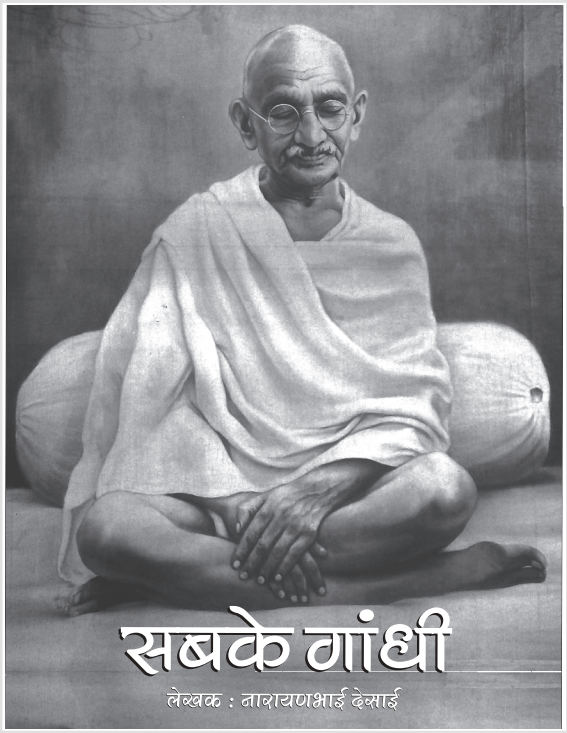
Financial Accounting
Spoken English & Personality Development
Desktop Publishing
Digital Marketing
Advanced Excel
Cyber Security
Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited
IT shapes future
(A Public Limited Company Promoted by Govt. of Rajasthan)

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें
या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका : पृष्ठ-28, अक्टूबर, 2026 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका **RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x**







सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext.
Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

सबके गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च रुपये 75/– अलग से देय होगा।